विशेषांक

UPBIL 04831

मूल्य ₹100

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

संस्कृति पर्व

Sanskritiparva

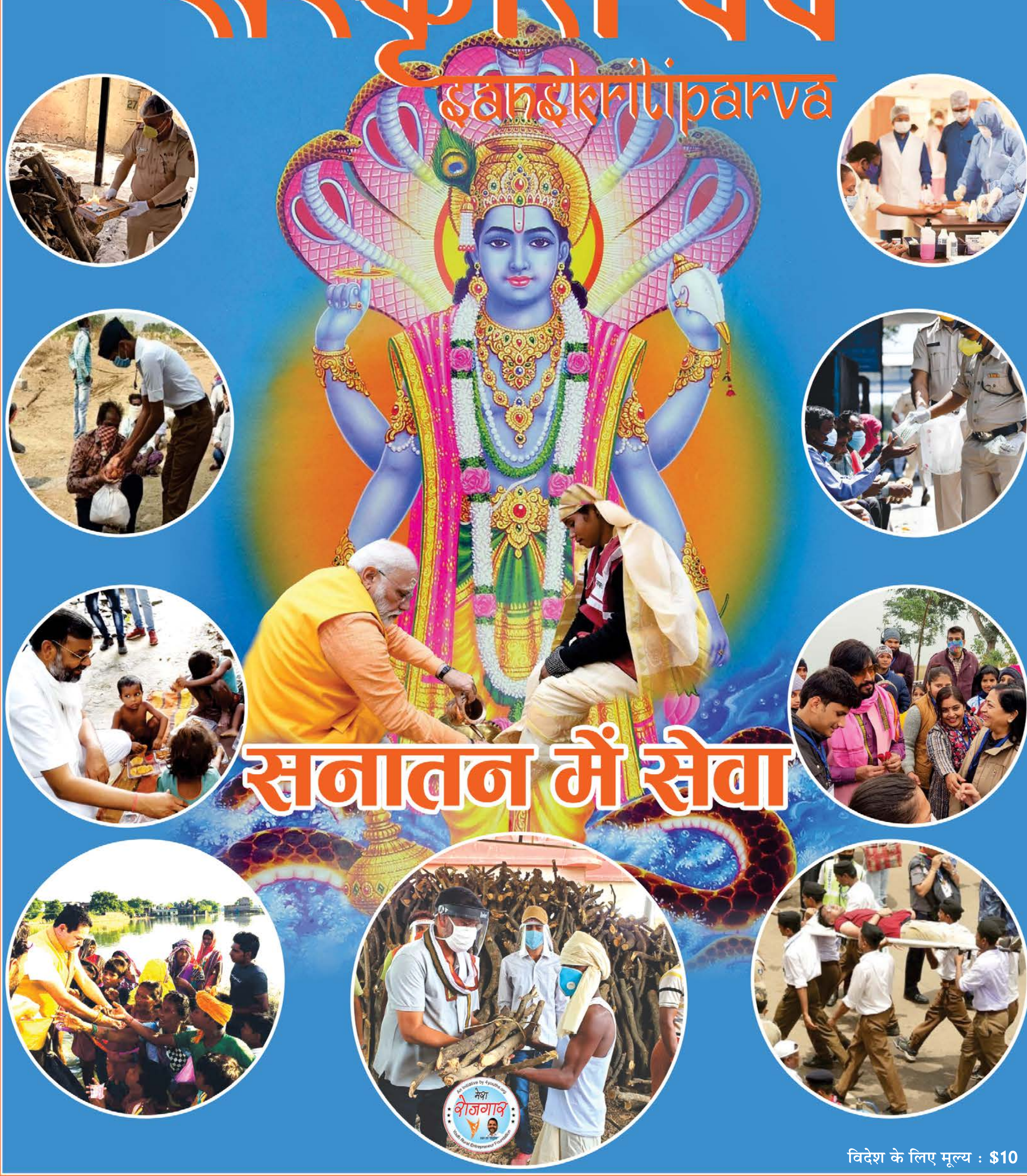

सनातन में सेवा

विदेश के लिए मूल्य : $10

श्री रामचरितामानस

सुन्दरकाण्ड

(मारवाड़ी)

अनिता अग्रवाल

Bharat Ratna, Mahamana
Pt. Madan Mohan Malviya
Founder, Ganga Mahasabha

Prof. G. D. Agrawal
(Swami Gyanswaroop Sanand)
Inspiration, Ganga Mahasabha

Under the Guidance of

Akhil Bharatiya Sant Samiti & Shri Kashi Vidwat Parishad

Ganga Mahasabha

All India Organisation, Dedicated to Nature & Culture

is organising

sanskriti sansad 2021

चर्चा संस्कृति की, चिंतन राष्ट्र का

on 12, 13 & 14th November, 2021

at **RUDRAKSH International Cooperation & Convention Center, Varanasi**

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01	श्रद्धा, विश्वास और सेवा-निष्ठा	ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज	12
02	दास्ययोग से ही ईशप्राप्ति	ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज	15
03	सेव्य-सेवक-सेवा-स्वरूप विमर्श	जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी	18
04	सेवासे परम कल्याण	ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका	21
05	सेवाका स्वरूप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	24
06	भगवान् श्रीआद्यशंकराचार्य और उनका सेवा-दर्शन		26
07	सेवा धर्मका पावन अधिष्ठान श्रीरामचरितमानस	डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह	30
08	सेवा-धर्म	श्री राजेन्द्रदासजी महाराज	34
09	ब्रह्मलीन योगिराज श्री देवराहा बाबाजी के अमृत-वचन		35
10	निरपेक्ष सेवा-धर्म	ब्रह्मलीन संत श्रीविनोबा भावे	36
11	सेवा कैसे करें	ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज	38
12	वशीकरण का मन्त्र, आशीर्वाद का तन्त्र तथा सफलता का यन्त्र है सेवा	गीतामनीषी स्वामी श्री वेदान्तानन्दजी महाराज	40
13	वेदों में सेवा के उपदेश	स्वामी श्री विवेकानन्दजी सरस्वती	43
14	स्मृतिवाङ्मय में सेवाधर्म की महिमा	डॉ० श्रीनिवासजी आचार्य	45
15	हर बार आपदा में लोकहित के लिए लगा दिया है सर्वस्व	डॉ अर्चना तिवारी	50
16	सेवा और स्वावलंबन के लिए संजय राय शेरपुरिया का संकल्प	संजय मानव	54
18	अब कोरोना और बाढ़ पीड़ितों की सेवा गरीबों के लिए मसीहा बन कर उभरे 'रविकांत'	आमोद कांत मिश्र	62
19	बेजुबानों के लिए संबल बना हेरिटेज फाउण्डेशन	अनिता अग्रवाल	68
20	जीवन-मृत्यु के बीच 15 दिन	स्नेह किरन	71
21	काव्यांगन	डॉ. रूचि चतुर्वेदी, आरती आलोक वर्मा, प्रगीत कुँअर, राजिंदर सिंह 'बग्गा', तेजेन्द्र शर्मा, रचना श्रीवास्तव, डॉ. हिमांगी द्विवेदी, डॉ० प्रीता प्रिया, डॉ ऋतु दुबे तिवारी	72-74

पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

– सम्पादक

प्रेरणा
परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय

संस्कृति पर्व
sanskritiparva

सेवा अंक
वर्ष-4 अंक-6 सितम्बर - 2021

सनातन प्रकाश पुंज

जगद्गुरू स्वामी वासुदेवाचार्य जी स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी

(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)

जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (श्री अयोध्या जी)

स्वामी राजकुमार दासजी (श्री अयोध्या जी)

संरक्षक

संजय राय शेरपुरिया

विद्वत परिषद

प्रो० सभाजीत मिश्र - (पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, (गो०वि०वि०)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
प्रो० संजय द्विवेदी - (निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
डॉ० लालता प्रसाद मिश्र - (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
ए. पी. मिश्र -(अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
अमरनाथ सिंह -(समाजसेवी एवं आध्यात्मिक चिंतक)
प्रो० विनय कुमार पाण्डेय -(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का० हि० वि० वि०)
प्रो० रामदेव शुक्ल - (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय - (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त - (कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
श्री मनोजकांत - (सम्पादक राष्ट्रधर्म)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी - (निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे - (पूर्व कुलपति, सिद्धार्थ वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद -(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय)
श्री प्रफुल्ल केतकर - (सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
डॉ मृणालिनी चतुर्वेदी - (अध्यक्ष क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय - (सम्पादक,जनता टीवी, उ. प्र.)
डॉ० देवर्षि शर्मा - (लेखक एवं समाजसेवी, कानपुर)
डॉ० प्रदीप राव - (शिक्षाविद्, गोरखपुर)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी - (इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह - (पूर्व प्रतिकुलपति, (गो०वि०वि०)
श्री आर एल पाण्डेय - (शिक्षाविद् टेक्सास, अमेरिका)
डॉ० नरेश अग्रवाल - (वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ० आर० सी० श्रीवास्तव - (अवकाशप्राप्त आई०ए०एस०)
राकेश त्रिपाठी - (आई० आर० एस०)
भास्कर दूबे - (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
डॉ० योगेश मिश्र - (समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)

सलाहकार परिषद

अध्यक्ष
श्रीमती रेशमा एच सिंह, (नई दिल्ली)
विशिष्ट सदस्य
श्री कुणाल तिलक, (पुणे)
श्री अनीश गोखले, (बेंगलुरु)
श्री अंबरीष फडणवीस, (मुम्बई)
सदस्य
श्री अजय उपाध्याय (वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी (बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
दयानंद पाण्डेय (लेखक एवं पत्रकार)
डॉ पुनीत विसारिया
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बुंदेलखण्ड वि. वि., झांसी
डॉ० ममता त्रिपाठी (दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन(एडवोकेट, इलाहाबाद)
डॉ. मिथिलेश तिवारी (संगीतज्ञ, गोरखपुर)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी (वाराणसी)
श्री हेमंत मिश्र (निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही (निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर०सी० मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री मारकण्डेयमणि त्रिपाठी
(अध्यक्ष, प्रेस क्लब, गोरखपुर)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
डॉ० रविकांत तिवारी(अमेरिका)
डॉ० राम शर्मा(शिक्षाविद्, मेरठ)
दिवाकर शर्मा(वरिष्ठ पत्रकार, शिवपुरी)
आमोदकांत मिश्र (वरिष्ठ पत्रकार, कुशीनगर)

प्रधान सम्पादक
श्री हुनमानजी महाराज

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

समूह सम्पादक
प्रो० राकेश कुमार उपाध्याय

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र

सम्पादक
संजय तिवारी

कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी

संपादक विचार
दुर्गेश उपाध्याय

सहायक सम्पादक (हिन्दी)
डॉ० अनिता अग्रवाल

सहायक सम्पादक (अंग्रेजी)
डॉ० राजीव तिवारी

समन्वय सम्पादक
विक्रमादित्य सिंह

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हितेश व्यास
कैप्टन सुभाष ओझा

सह सम्पादक
डॉ० दिनेशमणि त्रिपाठी
कमलेश कमल
गोविन्द पाराशर

विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

केन्द्र प्रभारी, अमेरिका
आचार्य रत्नदीप उपाध्याय

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव

सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी

क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ०प्र० से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 91 94508 87186-87
USA Office : 17413 Blackhawk St। Granada Hills, CA 91344 USA
Cell: 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

Mail us: editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

आशीर्वाद

पृथ्वी पर विकसित सृष्टि पर समय समय पर संकट आते रहते हैं। इन संकटों के समाधान के लिए परमात्म स्वरूप नारायण ने बहुत से समाधान उपलब्ध कराए हैं जो हमारे पूर्वाचार्य ऋषि परंपरा से हमें प्राप्त होते रहे हैं। हमारी सनातन परंपरा में वह सभी तत्व विद्यमान हैं जिनके माध्यम से सृष्टि और पृथ्वी को किसी भी संकट से मुक्ति प्रदान की जा सकती है। वर्तमान वैश्विक महामारी के रूप में विगत दो वर्षों से वर्तमान सभ्यता को संत्रस्त करने वाली कोरोना महामारी हो या अन्य कोई भी दैविक, भौतिक या प्राकृतिक आपदा, हमारी संस्कृति सभी से मुक्ति के साधन स्वरूप सेवा को केंद्र में लेकर गतिमान रहती है। अभी जिस त्रासदी से विश्व गुजर रहा है वर्तमान पीढ़ी ने पहली बार इस त्रासदी को देखा और अनुभव किया।

कोरोना की आपदा कुछ ऐसी थी कि विभिन्न प्रकार के उपकरण, व्यवस्थाएं और शोध पराजित होते दिखे। मनुष्य हतप्रभ, निराश और कहीं न कहीं असमंजस में था। अमेरिका और यूरोप की बड़ी-बड़ी अर्थव्यवस्थाएं असहाय नजर आ रही थीं। भारत के शहर और गांव इससे अछूते नहीं थे। भारत ने दुनिया के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। हमारे यहां सरकार और प्रशासन के साथ समाजशक्ति ने अपने दायित्व और कर्तव्यों का जिस प्रकार निर्वहन किया, उसे दुनिया ने देखा। इस महामारी काल में भारत ने जिस भाव को प्रगट किया, वह दुनिया में कहीं और देखने को नहीं मिला। वह सभी भविष्यवाणियां एक बार पुनः गलत सिद्ध हुई जो भारत को समझे बिना की जाती हैं। हमारा देश जो भौगोलिक रूप से दिखता है, मात्र वही नहीं है। भारत एक प्रेम की भाषा प्रकट करता है। दुनियाभर को इसने सहकार और संस्कार सिखाया। यह भावनाओं का देश है। कोरोना की त्रासदी में देश की हर सामाजिक और धार्मिक संस्था ने अपने सामर्थ्य के अनुसार सेवा कार्य किए। सेवा हजारों वर्षो से दर्शन और सनातन संस्कार का अभिन्न अंग है। इस आध्यात्म की पूंजी को संरक्षित रख कर ही हम किसी मानवीय सभ्यता को विकसित और सुरक्षित रख सकते हैं।

मुझे बहुत खुशी का अनुभव हो रहा है कि संस्कृति पर्व का नया अंक इसी सेवाभाव को केंद्र में रख कर प्रकाशित किया जा रहा है। यह कार्य बेहद महत्वपूर्ण है। इसके लिए संस्कृति पर्व के संपादक संजय तिवारी और उनकी संपादकीय परिषद की को मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ। यह अंक निश्चित रूप से भारत ही नही , विश्व की भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेगा और अपनी महान विरासत से परिचित कराएगा। मुझे इस अंक की प्रतीक्षा रहेगी।

नारायण

स्वामी जीतेन्द्रानंद जी सरस्वती

राष्ट्रीय महामंत्री अखिल भारतीय संत समिति एवं श्री गंगा महासभा, काशी

प्रबंध सम्पादक की कलम से

सृष्टि में सेवा की महत्ता प्रमाणित है। जब इस पर कोई संकट आता है तो, यह और भी प्रासंगिक हो जाती है। सेवाभाव ही मानवता का सार है। वैसे तो पृथ्वी पर प्रचलित सभी उपासना पद्धतियों और पंथों में सेवा के महत्व का बहुत ही विस्तार से उल्लेख है। सनातन संस्कृति में तो सेवा को धर्म का सार बताया गया है। जीवमात्र और प्रकृति की सेवा का भाव सनातन धर्म की पूजा पद्धति और मान्यताओं में निहित है। सनातन चिंतन में सेवा और धर्म को पृथक कर नहीं समझा गया है। यह भी कह सकते हैं कि यदि सनातन धर्म में पूर्ण निष्ठा है, तो आचरण में किसी भी अंश में हो, सेवा भाव रहेगा ही। सेवा धर्म का आधार है। सनातन धर्म में इस भाव को बड़े ही विस्तार से उद्घाटित और प्रतिष्ठित किया है। संतजन अपने तप के प्रताप से बिना किसी प्रत्यक्ष सेवा कार्य के भी निरन्तर धर्म, प्रकृति और मानवता की सेवा करते रहे हैं। उनके आचरण और तपोनिष्ठ जीवन में एकमात्र परोपकार और सेवा का भाव ही दिखायी देता है, ऐसे अनेक प्रसंग शास्त्रों में उल्लिखित भी हैं। अभी विगत दो वर्षों में विश्व और मानवता पर आई कोरोना जैसी महामारी में सेवा का महत्व और अर्थ प्रत्येक मनुष्य को ठीक से समझ मे आ गया है।

मुझे प्रसन्नता है कि संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद ने इस बार सेवा को ही केंद्र में रख कर अंक के प्रकाशन की योजना बनाई है। यह कई मायनों में सुखद है। भावी पीढ़ी को इससे बहुत ही जीवनोपयोगी मार्गदर्शन मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। यह कार्य केवल रूढ़ि रूप में धार्मिक नही है वरन मानव धर्म के उस विलुप्त हो रहे भाव को रेखांकित करने वाला है जिसकी आवश्यकता इस संकट काल मे प्रत्येक मनुष्य को है। किसी के सेवा कार्यों को देख कर उसके धार्मिक अथवा अधार्मिक होने की धारणा नहीं बनायी जा सकती किंतु इसमें संदेह नहीं कि धर्मपरायणजन जो भी कार्य करेंगे, उसमें सेवा का भाव अवश्य निहित होगा। अनेक लोककथाओं में स्पष्ट वर्णन है कि अधार्मिक जन भी अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए सेवा का ढोंग बड़े जोरशोर से करते रहे हैं। सत्य है कि सेवा धर्म का सार है, परमात्मा का मार्ग है परन्तु "सेवा परमो धर्मः" के भाव को समझना और धारण करना सहज नहीं है।

संस्कृति पर्व के इस महान आयोजन की उपादेयता और इस उद्देश्य की मैं हृदय से सराहना करता हूँ तथा अंक के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ। यह अंक प्रत्येक मनुष्य तक पहुँचे और सभी के भीतर के सेवाव्रती का जागरण करे, इसी कामना के साथ।

बी के मिश्र

प्रबंध संपादक

सनातनता का मौलिक चरित्र है सेवा

संजय तिवारी

श्रीमद्भागवत में वर्णित है-

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्।।

सनातन संस्कृति वस्तुतः सेवा की संस्कृति है। इसे इसके मौलिक चरित्र के रूप में ही देखना चाहिए। सनातन जीवन संस्कृति के सभी आधार ग्रंथ सेवा को सर्वोपरि महत्व देते हैं। श्रुति, स्मृति, उपनिषद, पुराण, इतिहास, सूत्र अथवा भाष्यों का आधार तत्व सेवा है। इसमे केवल एक मनुष्य अथवा कोई प्राणी विशेष ही नहीं है बल्कि सृष्टि, प्रकृति और इसमे उपस्थित समस्त चेतन, अचेतन के लिए समान भाव से सेवा से जोड़ कर ही स्थापना दी गयी है। इसीलिए जब भी प्रकृति, सृष्टि, समाज अथवा जगत के किसी भी भाग में कोई आपदा, विपत्ति या संकट उपस्थित होता है तो सनातन समाज एकमेव ध्येय के साथ सेवा भाव के साथ उसमें लग जाता है। सनातन संस्कृति के प्रत्येक पक्ष के लिए सेवाभाव सर्वोपरि है। इसीलिए सनातन ग्रथों के सृजन करने वाले महापुरुष, ऋषि, मुनि, तपस्वी हों या शासक के रूप में अस्तित्व में आये कोई राजपुरुष, सभी का लक्ष्य केवल सेवा भाव ही रहा है। इसमे सबसे बड़ी बात यह कि यहां कोई ऐसा नही मिलेगा जो सेवा के बदले कुछ विषय पाने की लालसा रखता हो। यह अलग बात है कि पश्चिमी जगत में सेवा के लगभग सभी प्रकल्प एक व्यवसाय जैसे ही मिलते हैं। सेवा ही एकमात्र साधन है जो मनुष्य को महान बना देती है। यहां तक कि पश्चिमी जगत में भी महानता उन्ही को प्राप्त हो सकी जिन्होंने सनातन के सेवाभाव को अपना मार्ग बनाया। विश्व मे ऐसा कोई व्यक्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता, जो सेवाके बिना महान जो सका हो। मनुष्य को नित्य मन, वचन और कर्म से किसी कार्य में प्रवृत्त रहना ही होता है। अच्छा होगा कि वह शास्त्रसम्मत रीति से शुद्ध भाव से प्रभु की सेवा भक्ति बुद्धि से करे, कृतज्ञता से करे, ऐसी दृष्टि से करे जिससे अन्यकी हानि न हो-

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'

जिस सच्चिदानन्द परमात्मा ने हमें ऐसा सुन्दर शरीर, संसार और सुविधाएँ दीं, जिस माता, पिता, राष्ट्र और गुरुने सन्मार्ग दिखाया, संरक्षण दिया, उनकी रक्षा हमारा भी कर्तव्य है। उनके प्रति कृतज्ञभाव से, सेवाभाव से हमें शास्त्रनिर्धारित कर्तव्यों का पालन करना चाहिये। सेवा शब्द सेवन का समानार्थी है। जिस प्रकार उचित रोग के लिये समुचित औषधि और आहार-विहार का निश्चित मात्रामें सेवन लाभप्रद होता है, किंतु स्वाद से प्रभावित होकर स्वच्छन्दतापूर्ण सेवन लाभप्रद नहीं होता, उसी प्रकार सेवा में सेवक को अपने सेव्य की पात्रता, उसके चयन, स्वयंके लक्ष्य, सेवाविधि, उसमें प्रयुक्त साधनादि सभी के औचित्य का ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा वह 'सेवा' यज्ञ का स्वरूप धारण नहीं कर सकती। इसमें भावशुद्धि और उपकरण-शुद्धि का बहुत महत्त्व है। इसके लिए गोस्वामी तुलसी दास जी श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं-

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

सेवा का सेव्य और सेवक के साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यह कर्मयोग की ऐसी

विधा है, जिस के द्वारा मनुष्य देव, किन्नर, गन्धर्व किंवा ईश्वरतक को प्रसन्न कर लेता है। यह स्वयंमें एक साधना है, जिसका सदुपयोग मानवता के लिये रचनात्मक होने पर वरदान बन जाता है और दुरुपयोग उसे विनष्ट कर देता है। यही कारण है कि एक ओर जहाँ अनेक ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों ने भगवान् शिव, ब्रह्मा और विष्णु की आराधना कर जीव-जगत्के हित के कार्य किये तथा सृष्टि की रक्षा की, वहीं रावण, बाणासुर, भस्मासुर और हिरणकश्यप आदि राक्षसों ने अपनी सेवा से शिव आदि देवों को प्रसन्नकर अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये जीवजगत को हानि पहुँचायी। सनातन जीवन संस्कृति बताती है कि सेवा के सात्विक लक्ष्य के परिणाम लोकमंगलाभिमुखी होते हैं, जबकि रजोगुणी एवं तमोगुणी लक्ष्य के परिणाम संसार के लिये हानिकर होते हैं। इसलिए हमारी संस्कृति में सेवा को यज्ञ माना गया है। यह सर्वश्रेष्ठ धर्मयज्ञ एक ओर जहाँ अत्यन्त सरल है, वहीं बहुत सूक्ष्म भी है। सृष्टि में चौरासी लाख योनियों में सामान्य रूप से साक्षात् सेवा का विशेषाधिकार मात्र मनुष्य जाति को ही प्राप्त है। अन्य किसी को नहीं क्योंकि अन्य योनियां भोगयोनि के अंतर्गत आती हैं।

धर्म, यज्ञ, सेवा, तप, दान, परोपकार, आराधना, जप आदि सब कुछ पुण्यप्रद कार्यों की सम्पन्नता व्यवस्थित रूप से मनुष्य ही कर सकता है, अन्य कोई नहीं। इसलिये मानव के लिये यह सरलतया सम्भव है, किंतु अन्यों के लिये परम दुरूह है। वस्तुतः 'सेवा' वह राजमार्ग है, जिसपर चलकर शास्त्रज्ञ विद्वान् मनीषी से लेकर सामान्यजन तक, सभी अपने जीवन-लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। इस पथ पर चलने के लिये सभी को अधिकार है, किसीके लिये कहीं कोई निषेध नहीं है। यहाँ तक कि जड़ वस्तुओं तथा पशु आदि जीवों में वृक्ष छाया और फल प्रदान करके, जलाशय जल और शीतलता देकर, सूर्य-चन्द्र प्रकाश-ऊष्मा और आह्लादकता देकर, पवन पवित्रकर और पृथ्वी अन्नादि प्रदान कर तथा अग्नि सर्वतोभावेन विश्व की सेवा करके और गोमाता दूध, दधि, गोमूत्र, गोमय तथा वत्स के द्वारा मानव का सहयोग करती हैं, जबकि मनुष्य को एतदपेक्षा अधिक बुद्धि, सामर्थ्य और विवेक प्राप्त है। वह अनेक प्रकारसे सेवाकर अपने जीवनको सफल बना सकता है। शिक्षा, अन्न, वात्सल्य, अर्थ, सद्भाव, लेखन, प्रवचन-सभी के द्वारा सेवा सम्भव है। परोपकार, प्राणरक्षा, बुभुक्षु को भोजन, पिपासु को जल, रोगी को औषधि, वस्त्रहीन को वस्त्र और वृद्ध की शारीरिक सेवाप्रभृति इस यज्ञ के असंख्य भेदोपभेद हैं। हमारे सभी शास्त्र सेवाभाव को विशेष रूप से मनुष्य के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में स्थापित करते हैं।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

इसी तथ्य की स्थापना गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी निम्नांकित शब्दों में करते हैं, यथा-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

श्रीमद्भगवद्गीता में गुण-भेद से सेवा तीन प्रकार की बतायी गयी है- सात्विकी, राजसी और तामसी। भारतीय दर्शन में एक ओर जहाँ देवाराधन सेवा है, वहीं भगवद्-उपासना भी भगवत्सेवा है। इस चिन्तनधारा में सेवक का स्थान बहुत ऊँचा है; क्योंकि भगवान् भी इस स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूत भारतभूमि में सेवा के लिये ही अवतरित होते हैं और यदा यदा हि धर्मस्य की बात करते हैं। भगवान के लिये बताया गया है कि वे सभी के हित में प्रवृत्त रहने वाले हैं- **'सर्वभूतहिते रताः।'** भक्तों के साथ-साथ शत्रुओं को भी सद्गति प्रदान करने वाले हैं। चर-अचर सभी के स्वामी हैं और सेवक भी हैं। श्री हनुमान जी, गिद्धराज जटायु, शबरी आदि सभी सामान्य योनि के जीव हैं, किंतु उनका सेवाधर्म इतना महत्त्वपूर्ण है कि भोगयोनि के होते हुए भी ये सभी ब्रह्म अर्थात भगवान के लिए

“सनातन जीवन संस्कृति बताती है कि सेवा के सात्विक लक्ष्य के परिणाम लोकमंगलाभिमुखी होते हैं, जबकि रजोगुणी एवं तमोगुणी लक्ष्य के परिणाम संसार के लिये हानिकर होते हैं। इसलिए हमारी संस्कृति में सेवा को यज्ञ माना गया है। यह सर्वश्रेष्ठ धर्मयज्ञ एक ओर जहाँ अत्यन्त सरल है, वहीं बहुत सूक्ष्म भी है। सृष्टि में चौरासी लाख योनियों में सामान्य रूप से साक्षात् सेवा का विशेषाधिकार मात्र मनुष्य जाति को ही प्राप्त है। अन्य किसी को नहीं क्योंकि अन्य योनियां भोगयोनि के अंतर्गत आती हैं।”

अत्यंत प्रिय हैं। सेवा से प्रसन्न भगवान् श्रीराम कभी शबरी का जूठन खाते हैं तो कभी गिद्धराज जटायु को अपने पिता के तुल्य मानते हैं और विभीषण एवं सुग्रीव को उनके भाइयों का राज्य प्रदान कर देते हैं। जो राज्य रावण अपने दसों सिर शिव को बलि कर के प्राप्त करता है, वह विभीषण को सहज प्राप्त हो जाता है।

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।

सनातन में ब्रह्म के सभी अवतार भगवान के ही अवतार हैं, किंतु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं-'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' लेकिन उनका चरित्र देखिए कि वह पाण्डवों के दूत बनते हैं, दुर्योधन द्वारा अपमान सहते हैं तो कभी नारी जाति की गरिमा की रक्षा के लिये अनन्त शाटि का बन जाते हैं, प्रतिज्ञा छोड़ महाभारत के युद्ध में शस्त्र ग्रहण कर लेते हैं और कभी युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में ब्राह्मणों का पाद-प्रक्षालन करते हैं तथा भोजनोपरान्त उच्छिष्ट पात्र स्वयं उठाने लगते हैं। भगवद्-अवतारों ने बार बार जीवजगत को अपनी सेवा से न केवल कृतार्थ किया है, प्रत्युत् मानवजाति की सेवा के लिये आदर्श भी प्रस्तुत किया है। इसीलिए सनातन के शास्त्रकार ईश्वर के सभी अवतारों की सेवाओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते,
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते,
म्लेच्छान् मूच्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।।

सेवा का एक अर्थ भजन भी होता है। इसी भजन के कारण किसी आराध्य का आराधक भक्त कहा जाता है। ब्रह्मर्षि नारद, प्रह्लाद, ध्रुव एवं अन्य भक्तजन अपने उत्कट भज नके कारण ही अमर हुए। यह भक्ति भी स्वामिसेवक, सख्य आदि भेदसे अनेकविध होती है-उद्धव, श्रीदामा और गोपिकाएँ अपनी-अपनी भक्ति-सेवा से ही प्रभु के कृपा भाजन बने। परवर्तीकाल में मीरा, सूरदास, तुलसी, रसखान, रहीम-जैसे कवि अपनी भक्ति से आज भी अमर हैं। अत्रि, जमदग्नि, वसिष्ठ, पराशर, व्यासप्रभृति ऋतम्भरा प्रज्ञा के धनी ऋषि-मुनि अपनी अखण्ड तपश्चर्या, प्रभुसेवा एवं लोककल्याण की भावना के कारण कालजयी हो सके। न केवल इतना ही प्रत्युत शंकरावतार भगवान् शंकराचार्य ने आज से लगभग ढाई हजार वर्षों पूर्व अवतरित होकर लोकसेवा के लिये स्वयं ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदों पर भाष्य किया और अद्वैतानुभूति, अपरोक्षानुभूति, सौन्दर्यलहरी, आत्मबोध, विवेकचूडामणि-जैसी अनेक कृतियों का सर्जन किया, जिनका अध्ययन कर प्रतिदिन कोटि-कोटि जनसमूह ज्ञान की प्राप्तिपूर्वक मुक्तिमार्ग का पथिक बन रहा है। आपने न केवल अपने जीवनकाल में जनसेवा की, प्रत्युत् समग्र भारतवर्षमें चार शांकर मठों की स्थापना भी की तथा उन पीठों पर आचार्य की नियुक्ति की परम्परा प्रशस्त की। जो अविच्छिन्नतया सम्प्रत्यपि चल रही है, उन पीठों पर विद्यमान आचार्यगण यद्यपि सनातन वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति की सेवा, रक्षा के लिये कृतसंकल्प हो, दृढ़प्रतिज्ञापूर्वक न केवल धर्म और संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, प्रत्युत उस सेवा के लिये आवश्यकतानुसार धर्मयुद्ध भी करना पड़े तो तैयार हैं। इसी प्रकार 'सेवा' का एक प्रकार राष्ट्रसेवा भी है।

नीतिशास्त्र में कहा गया है कि '**शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते।**' अर्थात् किसी भी राष्ट्रमें धर्म, ज्ञान और शास्त्रकी चर्चा तभी होती है, जब वह राष्ट्र सशस्त्र सैन्यदल से रक्षित होता है। ऐसी स्थितिमें राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा, सीमाओं की रक्षा तथा मानवीय नैतिक मूल्यों की सुरक्षा भी राष्ट्रसेवा के अन्तर्गत स्वीकृत है।

"भजन के कारण किसी आराध्य का आराधक भक्त कहा जाता है। ब्रह्मर्षि नारद, प्रह्लाद, ध्रुव एवं अन्य भक्तजन अपने उत्कट भज नके कारण ही अमर हुए। यह भक्ति भी स्वामिसेवक, सख्य आदि भेदसे अनेकविध होती है-उद्धव, श्रीदामा और गोपिकाएँ अपनी-अपनी भक्ति-सेवा से ही प्रभु के कृपा भाजन बने। परवर्तीकाल में मीरा, सूरदास, तुलसी, रसखान, रहीम-जैसे कवि अपनी भक्ति से आज भी अमर हैं। अत्रि, जमदग्नि, वसिष्ठ, पराशर, व्यासप्रभृति ऋतम्भरा प्रज्ञा के धनी ऋषि-मुनि अपनी अखण्ड तपश्चर्या, प्रभुसेवा एवं लोककल्याण की भावना के कारण कालजयी हो सके।"

एतदर्थ हमें राष्ट्र का सजग प्रहरी बने रहना चाहिये; क्योंकि 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' यदि हम राष्ट्र की सेवा के प्रति स्वल्पमपि असावधान हुए तो शत्रु हमारी भूमि को हानि पहुँचाने लगेंगे। इसलिये राष्ट्रीयता की रक्षा भी हमारा पुनीत कर्तव्य है। इसी प्रकार दैनिक जीवन में दैनिक आचार, वाक् एवं मनपर संयम रखना भी संस्कृति की सेवा है। मनुस्मृतिकार कहते हैं -

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च।'

अर्थात् आचार की रक्षा सर्वोपरि है। धन तो आता-जाता रहता है। धन न रहनेपर बाद में हो जायगा, किंतु 'वृत्ततस्तु हतो हतः।' आचारहीन होने पर सर्वस्व विनष्ट हो जाता है। जो आचार श्रेष्ठजन करते हैं, अन्य उन्हींका अनुकरण करते हैं-'

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त-देवेतरो जनः।

ऐसी स्थिति में ज्ञानी व्यक्ति का दायित्व अन्यों की अपेक्षा बढ़ जाता है।इसीलिये उपनिषद्कार बाल्यावस्था से व्यक्ति को ऐसे ही उत्तम, शास्त्रीय एवं पवित्र संस्कारों के प्रति प्रवृत्त करते हैं- **'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।'** मनुस्मृतिमें आचार्य मनु भी अपनी रीतिसे कहते हैं -

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

यह सेवा एक ओर जहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण है, वहीं सूक्ष्म विचार की अपेक्षा भी रखती है 'हीन सेवा न कर्तव्या।' आचारहीन की सेवा करणीय नहीं है। एतावता विवेकपूर्वक सेवा करने का विधान है। इसीलिये सेवा की सहज सुलभता के बावजूद नीतिकार कहते हैं- **सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।** अर्थात् सेवा का धर्म-निर्वाह इतना गहन है कि योगियों, सिद्धों के लिये भी अगम्य है। यह कार्य अति सरल होने के बावजूद सूक्ष्मता, निष्ठा, समर्पण, एकाग्रभाव, पारदर्शिता, निष्कपटता, विवेकशीलता, प्रभु की असीमानुकम्पा, देव, गुरु और पितरों की प्रसन्नता एवं आशीर्वाद, माता-पिता की कृपा और जन्मजन्मान्तरीय पुण्यराशि तथा संस्कारों के प्रभाव के अधीन है, किंतु मनुष्यको अपने कर्मयोग, सत्संगति, गुर्वाज्ञा-पालन तथा तपश्चर्या के द्वारा पूर्व संस्कारों को जाग्रत् करना चाहिये। प्रयत्न से पत्थर भी मोम हो जाता है। अतः सेवा से सब कुछ सम्भव है।

सनातन संस्कृति के इस चरित्र को विश्व ने अनेक बाद देखा और सराहा भी है। पश्चिमी जगत ने भी सीखने की कोशिश की है। धरती पर जब भी संकट आता है, लोग भारत भूमि से ही अपेक्षा भी करते हैं। आज के घोर प्रतिस्पर्धा और व्यावसायिक वैश्विक परिवेश में भी बीते दो वर्षों में महामारी के बीच जो सेवाभाव प्रस्तुत कर भारत ने मनुष्य जाति के लिए किया है वह सभी के सामने है। औषधि, वस्त्र, अन्न, धन और अन्य प्रकार से दुनिया के अनेक देशों की सहायता होते सभी ने देखा है। अपने देश के भीतर ऐसी महामारी के समय को सेवाभाव से ही संयोजित और संभाला जा सका है। संस्कृति पर्व के इस अंक का आयोजन उसी सेवा भाव को लोगों तक पहुचाने का एक गिलहरी प्रयास है।

इस अंक के संयोजन और सामग्री उपलब्ध कराने में गीता प्रेस, गोरखपुर के आचार्य लालमणि तिवारी जी के प्रति मैं विशेष रूप से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। आचार्य तिवारी और गीता प्रेस के पुस्तकालय के सहयोग ने संस्कृति पर्व के इस आयोजन को सुगम बना दिया।

"सनातन संस्कृति के इस चरित्र को विश्व ने अनेक बाद देखा और सराहा भी है। पश्चिमी जगत ने भी सीखने की कोशिश की है। धरती पर जब भी संकट आता है, लोग भारत भूमि से ही अपेक्षा भी करते हैं। आज के घोर प्रतिस्पर्धा और व्यावसायिक वैश्विक परिवेश में भी बीते दो वर्षों में महामारी के बीच जो सेवाभाव प्रस्तुत कर भारत ने मनुष्य जाति के लिए किया है वह सभी के सामने है। औषधि, वस्त्र, अन्न, धन और अन्य प्रकार से दुनिया के अनेक देशों की सहायता होते सभी ने देखा है। अपने देश के भीतर ऐसी महामारी के समय को सेवाभाव से ही संयोजित और संभाला जा सका है। संस्कृति पर्व के इस अंक का आयोजन उसी सेवा भाव को लोगों तक पहुचाने का एक गिलहरी प्रयास है।"

श्रद्धा, विश्वास और सेवा-निष्ठा

ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

यात्रा वहींसे प्रारम्भ होती है, जहाँ मनुष्य स्थित रहता है। साधनाका उपक्रम भी वहींसे होता है, जहाँ साधककी स्थिति होती है। यदि अपनी स्थितिसे उच्चकोटिकी साधना की जाय तो उसमें स्थिरता आना कठिन होता है और साधक गिर पड़ता है। इसकी अपेक्षा यदि नीचेके स्तरसे साधनाका आरम्भ हो तो शीघ्र उन्नतिकी सम्भावना रहती है। हम कहाँ स्थित हैं, इसका पता अपने-आपको चलना कठिन है। कारण यह है कि मनुष्य प्रायरू अपने व्यवहारमें कुछ आसक्ति या दम्भ रखता है। इनका अभ्यास, संस्कार इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि वह स्वयंको वैसा ही समझने लगता है। इससे आत्म-निरीक्षण-परीक्षणकी योग्यता क्षीण हो जाती है। जिस सूक्ष्मदृष्टिसे वह दूसरोंको देख पाता है, वैसी दृष्टि अपने-आपपर नहीं डाल पाता। जैसे अपने नेत्रोंकी पुतली अपनी आँखसे नहीं दीखती, वैसे ही अपने गुण-दोष भी मनुष्यको नहीं दीखते।

वस्तुतः आत्म-निरीक्षणके लिये भी किसी सूक्ष्म दृष्टि-सम्पन्न अन्य सत्पुरुषकी सहायताकी ही आवश्यकता है। साधककी त्रुटियोंकी जानकारी किसी अनन्तदर्शी-सत्पुरुषको ही होती है। उसे उसकी हित-भावनापर विश्वास होना भी आवश्यक है। जिसके जीवनमें अपने किसी हितैषीपर पूरा विश्वास न हो, उस संशयालुको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। उसका अहंकार कितना बड़ा है और वह कितना असहाय है-इस बातको वह स्वयं समझ नहीं पाता। अपने लक्ष्यके प्रति भी वह आस्थावान् नहीं है; क्योंकि अपने लक्ष्य-वेधके प्रति यदि उत्साह और तत्परता होती तो वह झूठा अहंकार छोडक़र अपनी त्रुटियोंको समझने, मानने और दूर करनेके लिये प्रयत्नशील हो जाता। वस्तुतः वह अपनी नासमझीको ही बड़ी समझदारी मानकर सत्यसे विमुख हो रहा है।

क्या आप अपनी जीवनचर्यासे और प्रगतिसे सन्तुष्ट हैं? क्या आपने समग्र जीवनके लिये निष्ठापूर्वक इसी स्थितिका वरण कर लिया है? यदि नहीं तो आपको उस स्थितिका बोध प्राप्त करना चाहिये; जहाँ पहुँचना है। अज्ञात मार्गसे अज्ञात लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये अज्ञानमें रहकर कैसे अग्रसर हुआ जा सकता है? अनुपलब्ध-अनमिले साधन और अनजाने मार्गसे, आप वहाँ कैसे पहुँच पायेंगे? आपको एक अनुभवी सन्त और सुहृद् पथ-प्रदर्शककी अपेक्षा है। क्या आप भीतर-ही-भीतर इस अपेक्षाका अनुभव करते हैं? क्या आपके हृदयमें इसकी पिपासा है?

अपने हितैषीके प्रति जो श्रद्धा, विश्वास अथवा सेवा-भावना है, वह उसका उपकार करनेके लिये नहीं है। 'मैं अपनी सेवाके द्वारा उसको उपकृत करता हूँ या सुख पहुँचाता हूँ'-यह भावना भी अपने अहंकारको ही आभूषण पहनाती है। विश्वास या श्रद्धा दूसरेको अलंकृत करनेके लिये नहीं होती, वह अपने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये होती है। सेवा जिसकी की जाती है, उसकी तो हानि भी हो सकती है। लाभ उसीको होता है, जो सद्भावसे सेवा करता है। अतएव सेवा करते समय यह नहीं देखना चाहिये कि हम किसकी सेवा कर रहे हैं? भाव यह होना चाहिये कि सेवाके द्वारा हम अपना स्वभाव अच्छा बना रहे हैं; अर्थात् अपने स्वभावसे आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता आदि दोषोंको दूर कर रहे हैं। यह सेवा हमारे लिये गंगाजलके समान निर्मल एवं उज्ज्वल बनानेवाली है। वस्तुतः सेवाका फल कोई स्वर्गादिकी प्राप्ति नहीं है और न धन-धान्यकी। सेवा स्वयंमें सर्वोत्तम फल

“विश्वास या श्रद्धा दूसरेको अलंकृत करनेके लिये नहीं होती, वह अपने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये होती है। सेवा जिसकी की जाती है, उसकी तो हानि भी हो सकती है। लाभ उसीको होता है, जो सद्भावसे सेवा करता है। अतएव सेवा करते समय यह नहीं देखना चाहिये कि हम किसकी सेवा कर रहे हैं? भाव यह होना चाहिये कि सेवाके द्वारा हम अपना स्वभाव अच्छा बना रहे हैं; अर्थात् अपने स्वभावसे आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता आदि दोषोंको दूर कर रहे हैं। यह सेवा हमारे लिये गंगाजलके समान निर्मल एवं उज्ज्वल बनानेवाली है। वस्तुतः सेवाका फल कोई स्वर्गादिकी प्राप्ति नहीं है और न धन-धान्यकी। सेवा स्वयंमें सर्वोत्तम फल है।”

है। जीवनका ऐसा निर्माण जो अपनेमें रहे, सेवा ही है। सेवा केवल उपाय नहीं है, स्वयं उपेय भी है। उपेय माने प्राप्तव्य। यदि आपकी निष्ठा सेवामें हो गयी तो कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहा। जिनके मनमें-'हमें तो सेवाका कोई फल नहीं मिला'-ऐसी कल्पना उठती हो, वे सेवाका रहस्य नहीं जानते। उनकी दृष्टि अपनी प्राप्त जीवनशक्ति एवं प्रज्ञाके सदुपयोगपर नहीं है, किसी आगन्तुक पदार्थपर है। सेवा कभी अधिक नहीं हो सकती; क्योंकि जबतक अपना सम्पूर्ण प्राण सेवामें समा नहीं गया, तबतक वह पूर्ण नहीं हुई, अधिकताका तो प्रश्न ही क्या? सच पूछा जाय तो सेवा ही जीवनका साधन है और वही साध्य भी है।

विश्वको सेवाकी जितनी आवश्यकता है, उसकी तुलनामें हमारी सेवा सर्वथा तुच्छ है। यदि विश्वकी सेवाके लिये क्षीर-सागरके समान सेवाभावकी आवश्यकता है तो हमारी सेवा एक सीकर-(बूँद)-के बराबर भी नहीं है। सेवकके प्राण अपनी सेवाकी अल्पता देख-देखकर व्याकुल होते हैं और उसकी वृद्धिके लिये अनवरत प्रयत्नशील रहते हैं। जिसको अपनी सेवासे आत्मतुष्टि हो जाती है, वह सेवारसका पिपासु नहीं है। पिपासा अनन्त रसमें मग्न हुए बिना शान्त नहीं हो सकती। वह रस ही सेवकका सत्य है। सेवा इसी सत्यसे एक कर देती है।

विश्वको सेवाकी जितनी आवश्यकता है, उसकी तुलनामें हमारी सेवा सर्वथा तुच्छ है। यदि विश्वकी सेवाके लिये क्षीर-सागरके समान सेवाभावकी आवश्यकता है तो हमारी सेवा एक सीकर-(बूँद)-के बराबर भी नहीं है। सेवकके प्राण अपनी सेवाकी अल्पता देख-देखकर व्याकुल होते हैं और उसकी वृद्धिके लिये अनवरत प्रयत्नशील रहते हैं। जिसको अपनी सेवासे आत्मतुष्टि हो जाती है, वह सेवारसका पिपासु नहीं है। पिपासा अनन्त रसमें मग्न हुए बिना शान्त नहीं हो सकती। वह रस ही सेवकका सत्य है। सेवा इसी सत्यसे एक कर देती है।

सेवाधर्मको योगियोंके लिये भी गहन कहा गया है-'सेवाधर्मरू परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' वह कठिन भी कम नहीं-'सब तें सेवक धरमु कठोरा।' उसे समझना भी कठिन है। वस्तुतः जबतक सेवाके लिये किसी उद्दीपनकी अपेक्षा रहती है, तबतक सेवा नैमित्तिक है, नैसर्गिक नहीं। सेवा सेव्यसे दूर रहकर भी हो सकती है और जो सम्मुख हो, उसकी भी हो सकती है। जैसे सूर्यका प्रकाश, चन्द्रमाका आह्लाद सहज उल्लास है, वैसे ही सेवाका आलम्बन चाहे कोई भी हो, उसमें सेवकको परमतत्त्वका ही दर्शन होता है। आलम्बन बनानेमें अपने पूर्ण संस्कार या पूर्वाग्रह काम करते हैं, परंतु सब आलम्बनोंमें एक तत्त्वका दर्शन करनेसे शुभग्रह एवं अशुभग्रह दोनोंसे प्राप्त इष्ट-अनिष्टकी निवृत्ति हो जाती है और सब नामरूपोंमें अपने इष्टका ही दर्शन होने लगता है। अभिप्राय यह है कि सेवा न केवल चित्तशुद्धिका साधन है, प्रत्युत शुद्ध वस्तुका अनुभव भी है। अतः सेवा कोई पराधीनता नहीं है, यह स्वातन्त्र्यका एक विलक्षण प्रकाश है, दिव्य-ज्योति है।

आप जो पाना चाहते हैं या जैसा जीवन बनाना चाहते हैं, उसे आज ही पा लेनेमें या वैसा बना लेनेमें क्या आपत्ति है? आप अपने जिस भावी जीवनका मनोराज्य करते हैं, वैसा अभी बन जाइये। उस जीवनको प्राप्त करनेके लिये अभ्यासकी पराधीनता क्यों अंगीकार करते हैं? आप जैसा जो कुछ होना चाहते हैं, अभी हो जाइये। अपने जीवनको भविष्यके गर्तमें फेंक देनेसे क्या लाभ? आप सेवापरायण होना चाहते हैं तो हो जाइये। आपका जीवन क्या अपनेसे दूर है? क्या उसके प्राप्त हो जानेमें कोई देर है? फिर दुविधा क्यों है? सच्ची बात यह है कि आपके जीवनमें कोई ऐसी वस्तु घुस आयी है, आपके अन्तर्देशमें किसी वस्तु या व्यक्तिकी आसक्तिने ऐसा प्रवेश कर लिया है कि आप उसका परित्याग करनेमें हिचकिचाते हैं। इसीसे जैसा होना चाहते हैं, वैसा हो नहीं पाते। आप मनके निर्माणके चक्रव्यूहमें मत फँसिये, शरीरको ही वैसा बना लीजिये। मन भी वस्तुतः एक शारीरिक विकास ही है। शरीर अपने अभीष्ट स्थानपर जब बैठ जाता है तो मन भी अपनी उछल-कूद बन्द कर देता है। पहले मन ठीक नहीं होता, मनको ठीक किया जाता है। आप जो सेवाकार्य कर रहे हैं, वह आपकी साधना है। सम्पूर्ण जीवनको उसीमें परिनिष्ठित करना है। अतः साध्य स्थितिको बारम्बार अनुभवका विषय बनाना ही साध्यमें स्थित होना है।

आपकी सेवाका प्रेरक स्रोत क्या है? क्या किसी मनोरथकी पूर्त्तिके लिये सेवा करते हैं? क्या अहंकारकी आकांक्षा है? क्या सेवाके द्वारा किसीको वशमें करना चाहते हैं? तो सुन लीजिये, यह सेवा नहीं, आपके स्वार्थका ताण्डव नृत्य है। अपनी सेवाको पवित्र रखनेके लिये सूक्ष्म-दृष्टिकी आवश्यकता है।

आपकी सेवामें किसीसे स्पर्धा है? आप किसीकी सेवासे अपनी सेवाकी तुलना करते हैं? दूसरेको पीछे करके स्वयं आगे बढना चाहते हैं? किसी दूसरेकी सेवा देखकर आपके मनमें जलन होती है? क्या आप ऐसा सोचते हैं कि अमुक व्यक्तिके कारण मेरी सेवामें बाधा पड़ती है? स्पष्ट है कि आप सेवाके मर्मस्पर्शी अन्तरंग रूपको नहीं देख पाते। सेवा चित्तको सरल, निर्मल एवं उज्ज्वल बनाती है। उसमें अनुरोध-ही-अनुरोध है, किसीका विरोध या अवरोध नहीं है।

श्रद्धासे सम्पृक्त सेवाका नाम ही धर्म है। स्नेह-युक्त सेवा वात्सल्य है। मैत्रीप्रवण सेवा ही सख्य है। मधुरसेवा ही शृंगार है। प्रेम-सेवा ही अमृत है। सेवा संयोगमें रससृष्टि करती है और वियोगमें हितवृष्टि करती है। सेवा वह दृष्टि है, जो पाषाणखण्डको ईश्वर बना दे, मिट्टीके एक कणको हीरा कर दे। सेवा मृतको भी यशःशरीरसे अमर कर देती है। इसका कारण क्या है? सेवामें

अहंकार मिट जाता है, ब्रह्म प्रकट हो जाता है।

सेवा-निष्ठाकी परिपक्वताके लिये उसका विषय एक होना आवश्यक है। वह भले ही माँ हो, पिता हो, पति हो, गुरु हो या इष्ट हो; सबमें ईश्वर एक है। एककी सेवा अचल हो जाती है और कोई भी वस्तु अपनी अचल स्थितिमें ब्रह्मसे पृथक् नहीं होती। चल ही दृश्य होता है, अचल नहीं। अचल अदृश्य और ज्ञात होकर ज्ञानस्वरूप ब्रह्मसे अभिन्न हो जाता है, अतः किसी भी साधनामें निष्ठाका परिपाक ही सिद्धि है। यदि सेवाका विषय अन्य रूपसे स्फुरित होगा तो उपासनाका विषय ईश्वर होगा। यदि सेवाकी वृत्ति परिपक्व दशामें शान्त हो जायगी तो वह आत्मासे भिन्न न दीखेगी। यही कारण है कि सेवाका आश्रय और विषय एक हो जाता है और सेवक-सेव्यमें भेद नहीं रह जाता। यदि विचारकी उच्च कक्षामें बैठकर देखा जाय तो निःसन्देह अद्वैत स्थिति और अद्वैतवस्तुका बोध एक हो जायगा। अन्तर्वाणी स्वयं महावाक्य बनकर प्रतिध्वनित होने लगेगी। अतः साधनाका प्रारम्भ सेवासे होकर सेवाकी अनन्यता, अनन्तता एवं अद्वितीयतामें ही परिसमाप्त हो जाता है।

सेवाके प्रारम्भमें स्व-सुखकी वासना रहती है। अपने इष्टकी सेवा करे, सुख पहुँचाकर सेवक सुखी होता है। इससे एक लाभ तो यह होता है कि शनैः-शनैः सुखी होनेके निमित्तों और उपादानोंसे निवृत्ति होने लगती है। केवल अपने इष्टके सुखसे ही सुखी होनेका स्वभाव बन जाता है और अन्यकी ओरसे निवृत्ति हो जाती है। यह स्वार्थ होनेपर भी निवृत्तिका साधन है, इसलिये प्रारम्भिक दशामें इसको दोष नहीं कहा जा सकता। 'तत्सुखे सुखित्वम' (ना० भ० सू० २४)-यह प्रेमका प्रथम लक्षण है। जिस हृदयमें अपने इष्टको देखना है, रखना है, उसमें प्रियताका, सुखका परिप्रेक्ष्य होना भी आवश्यक है। अपने इष्टके सुखके लिये ही अपने हृदयमें सौरम्य, माधुर्य, सौन्दर्य, सौकुमार्य और सौस्वर्यके साथ-ही-साथ हितभावकी भूमिकाका आना अपेक्षित है। जो हृदय इष्टकी मुसकान देखकर मुसकुराता नहीं, उसका प्रेम प्रकाशमयी चितवनके साथ प्रफुल्लित नहीं हो जाता, उसमें निष्ठा देवी पदार्पण नहीं करती, परंतु यह रसास्वादन एक प्रकारका स्वार्थ ही है। सेवा कोटि-कोटि दुरूखको वरण करके भी अपने स्वामीको सुख पहुँचाती है। व्यजन करनेवाला स्वयं प्रस्वेद-स्नान करके भी अपने इष्टको व्यजनकी शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे तर करता है। यही सेवा 'मैं' के अन्तर्देशमें विराजमान परमात्मासे एक कर देती है।

सेवामें इष्ट तो एक होता ही है, सेवक भी एक ही होता है। वह सब सेवकोंसे एक होकर अनेक रूप धारण करके अपने स्वामीकी सेवा कर रहा है। अनेक सेवकोंको अपना स्वरूप देखता हुआ, सेवाके सब रूपोंको भी अपना ही रूप देखता है। अपने इष्टके लिये सुगन्ध, रस, रूप, स्पर्श और संगीत बनकर वह स्वयं ही उपस्थित होता है। सेवकका अनन्य भोग्य स्वामी होता है और स्वामीका अनन्य भोग्य सेवक। सभी गोपियोंको राधारानी अपना ही स्वरूप समझती हैं और सभी विषयोंके रूपमें वही श्रीकृष्णको सुखी करती हैं। भिन्न दृष्टि होनेपर ईर्ष्याका प्रवेश हो जाता है। सेवामें ईर्ष्या विष है और सरलता अमृत।

सेवामें समाधि लगना विघ्न है। किसी देश-विशेषमें या काल-विशेषमें विशेष रहनीके द्वारा सेवा करनेकी कल्पना वर्तमान सेवाको शिथिल बना देती है। सेवामें अपने सेव्यसे बड़ा ईश्वर भी नहीं होता और सेवासे बड़ी ईश्वराराधना भी नहीं होती ! भक्त पुण्डरीककी कथाके द्वारा यही रहस्य स्पष्ट किया गया है। स्वयं रसास्वादन करनेसे भी स्वामीको सुख पहुँचानेमें बाधा पड़ती है। किसी भी कारणसे किसीके प्रति भी चित्तमें कटुता आनेपर सेवा भी कटु हो जाती है; क्योंकि सेवा शरीरका धर्म नहीं, रसमय हृदयका मधुमय नित्य नूतन उल्लास है। सेवा भाव है, क्रिया नहीं है। भाव मधुर रहनेपर ही सेवा मधुर होती है। इस बातसे कोई सम्बन्ध नहीं कि वह कटुता किसके प्रति है। किसीके प्रति भी हो, रहती तो हृदयमें ही है। वह कटुता अंग-प्रत्यंगको अपने रंगसे रँग देती है, रोम-रोमको कषाय-युक्त कर देती है। अतः अविश्रान्त रूपसे अपने अन्तरको नितान्त शान्त रखकर रोम-रोमसे रसका विस्तार करना ही सच्ची सेवा है। अपना स्वामी ही सब कुछ है और हमारा सब कुछ उसकी सेवा है।

स्वामीकी सत्ता ही सेवककी सत्ता है। सेवकका अस्तित्व पृथक् नहीं होता। अस्तित्व पृथक् होते ही एक नया 'मैं' उत्पन्न हो जाता है और वह सेवारसको अपनी ओर समेटने लगता है। ऐसी स्थितिमें सेवाका रूप संकीर्ण हो जाता है, नित्य-निरन्तर उदीर्ण नहीं रहता। सतत उदीर्ण न रहनेपर वह स्वामीको अविरत रूपसे सुख भी नहीं दे सकता। स्वामीका ज्ञान ही सेवकका ज्ञान है। जहाँ ज्ञानमें भिन्नता आयेगी, वहाँ मतभेद होनेकी सम्भावना बनी रहेगी और बुद्धि अहंके पक्षमें आबद्ध हो जायगी। निश्चय ही मतभेदमें वैमनस्यका बीज निहित रहता है। वह आज या कल अंकुरित होगा और सेवाको कुण्ठित कर देगा। स्वामीका सुख ही सेवकका सुख है, उसका अपना कोई अलगसे सुख नहीं है। अलग सुख सेवककी परिच्छिन्नता, स्वार्थ और पृथक्ताका पोषक है। सेवकका जबतक अपने स्वामीसे तादात्म्य नहीं हो जाता, वेदान्तकी भाषामें-जबतक सेवकावच्छिन्न चैतन्य स्वाम्यवच्छिन्न चेतनसे एक नहीं हो जाता, तबतक सेवा पूर्ण नहीं होती। यह एकताका भाव स्थिति या सायुज्य नहीं है। सेवाकी पूर्णताका अर्थ है-राधा-कृष्णकी एकता या आत्मा-परमात्माकी एकता। पूर्ण एकतामें द्वैत नितान्त बाधित हो जाता है। यही सेवा है और साधनाका लक्ष्य भी यही है। सेवा निष्ठाका स्वारस्य भी यही है।

दास्ययोग से ही ईशप्राप्ति

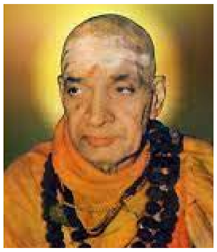

ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी
श्रीकरपात्रीजी महाराज

“बिम्बके शृंगारसे प्रतिबिम्ब अनायास ही शृंगारित हो जाता है; अथवा विश्वभरके शिल्पी (कारीगर) भी प्रतिबिम्बको मुकुट-कुण्डलादि पहनानेमें असमर्थ ही रहेंगे। ठीक इसी तरह कोई भी प्राणी अपने पारलौकिक अभ्युदय, निःश्रेयसादि पुरुषार्थोंकी प्राप्ति तभी कर सकता है, जब वह श्रद्धा-भक्तिसे प्रभु-पद-पंकजकी सपर्या करे। माना कि आज साम्राज्य, वैराज्यादि अनेक आनन्द-सामग्रियोंसे कोई परिपूर्ण है, परंतु इस विनश्वर शरीरका पात होनेपर वह कहाँ जायगा, कैसे और क्या करेगा? कोई भी ऐसा व्यक्ति या संस्था नहीं है, जहाँ हम अपनी धरोहर रखें और जन्मान्तरमें फिर ग्रहण कर सकें।”

इस स्वतन्त्रतायुगमें ‘दास्ययोग’ का उपदेश! पर सचमुच भगवान की दासतामें जो सुख तथा शान्ति है, वह संसारके सम्राट् बननेमें कहाँ? भगवान् अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। उनकी दासतामें सबसे बड़ी विलक्षणता तो यह है कि दास अपनी सच्ची सेवासे उनका सखा ही नहीं, हृदयेश्वरतक बन जाता है। ‘दासोऽहम’ कहते-कहते ‘सोऽहम’ की नौबत आ जाती है और गोपीवस्त्रापहारी भगवान् हठात् ‘दासोऽहम’ के ‘दा’ कारको चुरा लेते हैं-

दासोऽहमिति या बुद्धिः पूर्वमासीज्जनार्दने।
दाकारोऽपहृतस्तेन गोपीवस्त्रापहारिणा।।

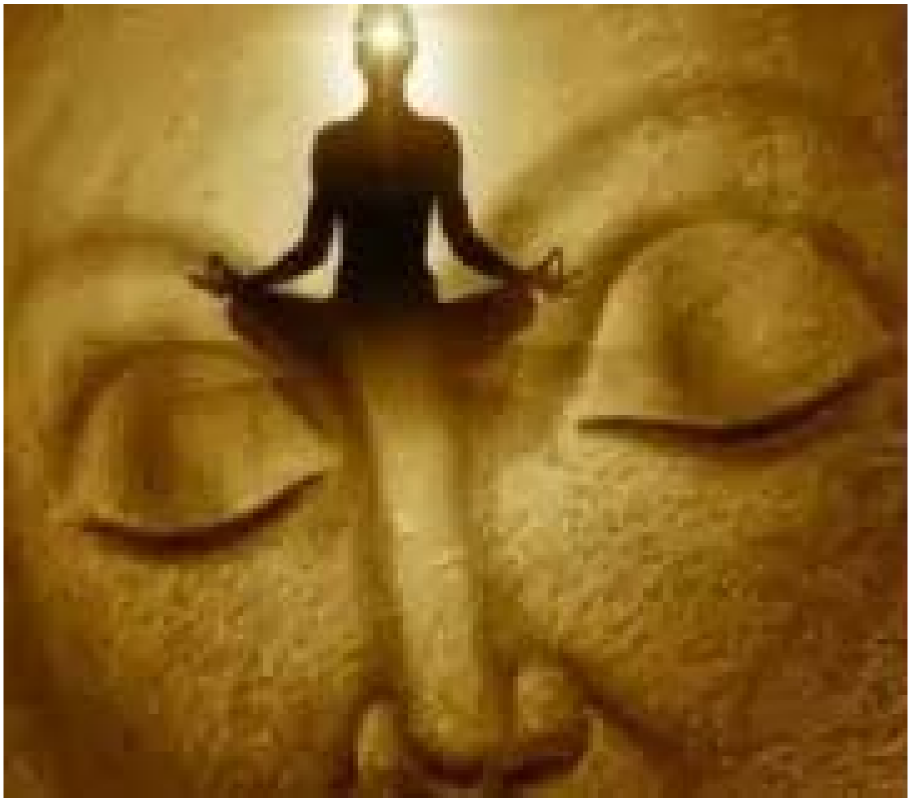

भगवान की सेवा कठिन होते हुए भी बड़ी सरल है। वे तो थोड़ेमें ही प्रसन्न हो जाते हैं। आत्माराम, आप्तकाम, पूर्णकाम भगवान्को धन, जन, विद्या, बल आदिकी अपेक्षा ही क्या है? सन्देह होता है कि यदि ऐसी बात है, तब भगवान् स्वयं ही भक्तोंको अपने सर्वस्व-समर्पणका आदेश क्यों करते हैं-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता ९। २७)

‘अर्जुन! तुम जो कुछ भी यज्ञ, तप, दानादि लौकिक, वैदिक धर्म-कर्म करते हो, वह सब

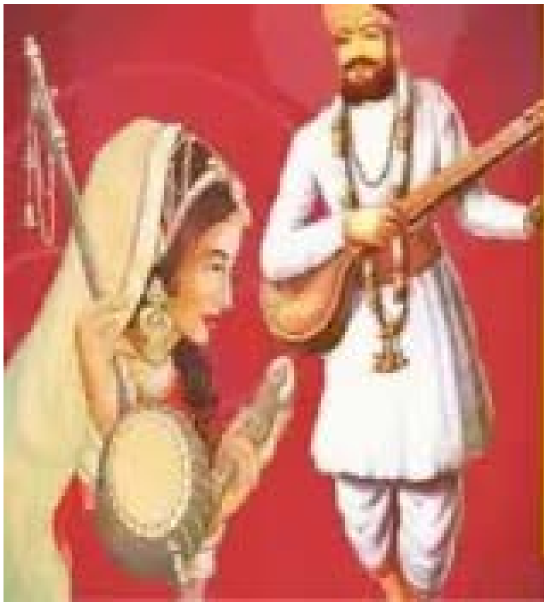

मुझ सर्वान्तरात्माको समर्पण कर दो। इसका समाधान यही है कि प्रभु स्वयं तो निजलाभ (स्वस्वरूपभूत अनन्त परमानन्दलाभ)-से ही परिपूर्ण हैं, परंतु भक्तकी कल्याणकामनासे ही उसके द्वारा समघ्पत सपर्याओंका ग्रहण नैसर्गिक करुणासे करते हैं; क्योंकि प्राणी जो कुछ भगवान्‌के पदपंकजमें समर्पण करता है, वही उसे मिलता है। जैसे दर्पणादिके भीतर प्रतिमुख-(मुख-प्रतिबिम्ब)-को यदि कटक-मुकुट-कुण्डलादि भूषण-वसन पहनाकर शृंगार करना हो तो मुख-(बिम्ब)-का ही शृंगार करना आवश्यक है। बिम्बके शृंगारसे प्रतिबिम्ब अनायास ही शृंगारित हो जाता है; अथवा विश्वभरके शिल्पी (कारीगर) भी प्रतिबिम्बको मुकुट-कुण्डलादि पहनानेमें असमर्थ ही रहेंगे। ठीक इसी तरह कोई भी प्राणी अपने पारलौकिक अभ्युदय, निःश्रेयसादि पुरुषार्थोंकी प्राप्ति तभी कर सकता है, जब वह श्रद्धा-भक्तिसे प्रभु-पद-पंकजकी सपर्या करे। माना कि आज साम्राज्य, वैराज्यादि अनेक आनन्द-सामग्रियोंसे कोई परिपूर्ण है, परंतु इस विनश्वर शरीरका पात होनेपर वह कहाँ जायगा, कैसे और क्या करेगा? कोई भी ऐसा व्यक्ति या संस्था नहीं है, जहाँ हम अपनी धरोहर रखें और जन्मान्तरमें फिर ग्रहण कर सकें। एकमात्र यही उपाय है कि धर्मशास्त्रानुसार यज्ञ-तप-दानादिसे भगवान की अर्चना करके भगवान्‌में ही उसे समर्पण किया जाय।'

करुणामय, सर्वस्व, सर्वसामर्थ्यशाली, सर्वप्रद, भगवान् ही प्राणियोंकी भक्ति-श्रद्धासे सम्पादित आराधनाओंका परम मनोहर फल प्रदान करते हैं। इसीलिये यद्यपि स्वतः-'नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः' के अनुसार प्रभु किसीका पुण्य-पाप नहीं ग्रहण करते; तथापि अपनी अचिन्त्य दिव्य लीलाशक्तिसे, भक्त-कल्याण-कामनासे भक्तसम्पादित सम्मानोंको ग्रहण करते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत पुनः-पुनः भक्तको प्रोत्साहित करते हैं कि तुम सब कुछ मुझमें ही समर्पित कर दो। भगवान् यह भी कहते हैं कि जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल मुझको समर्पण करता है, मैं उसे अनन्य आदरसे ग्रहण किंवा अशन करता हूँ। यद्यपि पत्र, पुष्प खाद्य पदार्थ नहीं हैं तथापि प्रभु भक्तिरस-परिप्लुत पत्र-पुष्पादिकोंको भी खाते हैं। भक्त-भावना-पराधीन प्रेमविभोर भगवान् विवेकहीन मुग्ध शिशुके समान पत्र-पुष्पादिको भी खा लेते हैं। अथच रसिकेन्द्रशेखर, रसराजमणि भगवान् भक्तिरसपरिप्लुत पत्र-पुष्पादिका स्वाद रसनासे ही लेना उचित समझते हैं। तभी तुलसीदल एवं जल-चिल्लुकसे ही भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंके हाथ अपने-आपको बेच देते हैं-

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

इतना ही क्यों, प्रेममय प्रभु तो नवनीत और दधिके लिये प्रेममयी व्रजांगनाओंके घर चोरी करने भी जाते हैं। क्षीरसागरशायी एवं परमानन्दसुधा-सिन्धु किंवा पूर्णानुरागरससागर भगवान्‌को तो अहीरकी 'छोहरियाँ' नाच नचा देती हैं-

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं।

किसी दिन नवनीत चुराकर आतप-संतप्त भूमिपर दौड़ते हुए श्रीकृष्णको देखकर कोई स्नेहविह्वला सौभाग्यशालिनी व्रजांगना कहती है-

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन।
आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव॥

'नवनीत चुरा लिया तो क्या हुआ, भले ले लिया; परंतु हे माधव! आतप-(घाम)-से तापित भूमिपर मत भागो, मत दौड़ो।' एक प्रेमी तो बड़ी सुन्दर सलाह देते हैं-

क्षीरसारमपहृत्य शङ्कया
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम घनान्धतामसे
नन्दनन्दन कथं न लीयसे॥

'प्रेममय नन्दनन्दन! यदि आपने नवनीत चुराकर माँके डरसे पलायन ही स्वीकार किया है तो फिर आओ नाथ! मेरे गाढ़े अज्ञानान्धकारसमाच्छन्न मानसमें, मैं तुम्हें छिपा लूँ; बस, फिर तुम्हें कोई नहीं देख सकेगा। यह आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम प्रभुकी सकामता केवल भक्तमनोऽनुगामिनी लीला-शक्तिके प्रभावसे ही है।'

नमो नवघनश्यामकामकामितदेहिने।
कमलाकामसौदामकणकामुकगेहिने ।।

'अनन्तकोटि कन्दर्पोंके मनोहरण करनेवाले नवघनश्याम भगवान्के लिये नमस्कार है, जो कि कमलाकी कामनावाले सुदामाके तण्डुलकी कामना करते हैं।'

प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये धन, उत्तम कुल, रूप, तप, व्रत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धियोग-ये सब पर्याप्त नहीं हैं। गजेन्द्रपर तो इन पूर्वोक्त धनादिके बिना भी भगवान् सन्तुष्ट हो गये। इतना ही नहीं, 'भगवत्पादारविन्दविमुख, द्वादश-गुण-सम्पन्न ब्राह्मण भी नगण्य है और भगवत्पादपंकजानुरागी श्वपच भी आदरणीय होता है। कारण, वह भूरिमान विप्र आत्म-शोधन भी नहीं कर सकता और वह श्वपच तो कुलसहित अपनेको मुक्त कर लेता है।' यद्यपि कहा जा सकता है कि साक्षात् भगवान्ने श्रीमुखसे ही कहा है-

ब्राह्मणो जगतो श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह।
विद्यया तपसा तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः।।

'समस्त प्राणियोंमें ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ है, फिर विद्या, तपस्या, संतोषरूपमें ही कलाओंसे युक्त ब्राह्मणोंके विषयमें तो कहना ही क्या?'

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम्।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम्।।

'मुझे अपना यह चतुर्भुजरूप भी ब्राह्मणसे प्रिय नहीं है। सर्ववेदमय ब्राह्मण है और सर्वदेवमय मैं हूँ।' फिर ब्राह्मणसे श्वपचकी श्रेष्ठता कैसे कही जा सकती है? तथापि भक्तिके बिना अत्यन्त पूज्य ब्राह्मण भी निन्द्य और भक्तियुक्त अतिसाधारण श्वपच भी आदरणीय है। यह कहकर भक्तिका ही माहात्म्य-वर्णन किया गया है। यहाँ ब्राह्मणकी निकृष्टता-वर्णनमें तात्पर्य नहीं है, वास्तवमें सिद्धान्त तो यह है कि जैसे गौ, तुलसी, अश्वत्थ, गंगाजल आदि पदार्थ भले ही अपनी

दृष्टिसे अकृत-कृत्य हों, परंतु पूजकोंके तो परम कल्याणके ही निदान हैं। गौ स्वयं पशु होनेके कारण चाहे आत्मकल्याण करनेमें असमर्थ ही हो, परंतु शास्त्रानुसार उसके रोम-रोममें देवताओंका निवास है और उसके पंचगव्य तथा रजसे अवश्य ही सर्वपापक्षय होता है। इसी तरह जन्मना श्रेष्ठ ब्राह्मण पूजकका कल्याण कर सकनेपर भी यदि स्वयं स्वधर्मनिष्ठ या भगवत्परायण न हुआ, तब तो वह आत्मकल्याण नहीं कर सकता। पूजकोंकी श्रद्धा सुदृढ़ करनेके लिये शास्त्रोंमें सर्वगुणनिरपेक्ष जन्मसे ही ब्राह्मणको श्रेष्ठ बतलाया गया है और ब्राह्मण कहीं जन्मना ब्राह्मणके ही गर्वमें स्वधर्मविमुख न हो जाय, अतः उसके लिये यह कहा गया है कि भगवान्से विमुख ब्राह्मणकी अपेक्षा तो भगवद्भक्त श्वपच भी श्रेष्ठ है। इस तरह निन्दापरक वचन ब्राह्मणोंको सावधान करनेके लिये हैं और स्तुति-परक वचन पूजकोंकी श्रद्धा स्थिर करनेके लिये हैं, परंतु मोहवश आज ब्राह्मण तो स्तुतिपरक और पूजक निन्दापरक वचनोंको ही सामने रखते हैं।

अस्तु, यह दास्ययोगका ही अद्भुत महत्त्व है कि जिसके बिना विप्र भी अकृतार्थ रहता है और जिसके सम्बन्धसे श्वपच भी कुलसहित कृतार्थ हो जाता है। धन, जन, देह, गेहादि निज सर्वस्व तथा अपने-आपको प्रभुमें समर्पण करके श्रद्धा-स्नेहपुररूसर प्रभुपदपंकजसेवन ही दास्ययोग है। प्रभुके परमानन्द-रसात्मक मधुर स्वरूप गुण-चरित्रादिमें मनकी गाढ़ आसक्ति ही मुख्य सेवा है। इसीकी सिद्धिके लिये वर्णाश्रम-धर्म, यज्ञ, तप, दान आदि परम अवश्यक हैं। तन, मन, धनसे भगवत्सेवामें तत्पर सेवक सिवा भगवान्के किसी वस्तुको अपना नहीं समझता। वह धर्म, कर्म, समाज-सेवा आदि सभी कुछ भगवान्के ही लिये करता है। निखिल विश्वको अपने भगवान का ही रूप समझकर उसकी सेवा करता है। सोते-जागते सदा ही अनन्य सेवकके समस्त व्यापार केवल स्वामीके लिये ही होते हैं। भगवान्का विश्व और उनके भक्त भगवदीय हैं। भगवदीय सेवासे भगवत्सेवा प्राप्त होती है। इसलिये भगवान का दास भगवदीय सेवामें बड़ा स्नेह रखता है। वास्तवमें यदि किसी सौभाग्यशालीको निष्कपट दास्ययोग मिल जाय तो फिर कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता। भगवत्पंकजमें जिसका मनोमिलिन्द आसक्त है, वह तो निश्चिन्त अनन्य रहता है। जो दशा पुत्रवत्सला माँके उत्संगलालित्य शिशुकी है, वही दशा सेवककी है। वे प्रभुके भरोसे हो अनन्य, अशोच रहते हैं-

सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।।

(रा०च०मा० ४।३।४)

भगवान्में आत्मनिवेदन करनेसे बढक्रर शोक-निवृत्तिका और उपाय ही क्या है? अनन्तकोटिब्रह्माण्डके माता-पिता भगवान्के शरणागत सेवकको फिर आँच कहाँ? शरणागतके लिये ही भगवान का 'मा शुचः' यह आश्वासन है। सेवाभक्तिका ऐसा महत्त्व है कि भगवद्भावनापन्न मुक्त संत भी मुक्तिकी ओर न देखकर सेवाभक्ति चाहते हैं। तभी तो श्रीप्रह्लाद पूर्ण

कृतकृत्य होकर भी भगवदीयोंकी तथा भगवान की सेवाका वर माँगते हैं।

सेव्य-सेवक-सेवा-स्वरूप विमर्श

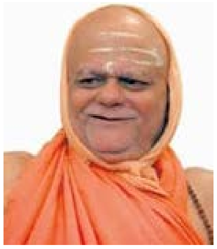

जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर
स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी

'सेव्, अङ्, टाप्' के योगसे 'सेवा' शब्दकी सिद्धि होती है, जिसका अर्थ परिचर्या है। स्वामीको सुख देकर स्वयं सुखी होना सेवाकी आधारशिला है। कदाचित् सेव्यकी धर्मबुद्धिसे सेवा की जाय, तब उक्त तत्सुखसुखित्वकी भावना अभ्युदय और निरूश्रेयसमें हेतु होती है। लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्ष अभ्युदय है। जन्म-मृत्युकी अनादि और अजस्र-परम्पराका आत्यन्तिक उच्छेद निःश्रेयस है। केवल जीविकोपार्जनके लिये हीन व्यक्तिकी सेवा अवश्य ही दुर्भाग्यपूर्ण है।

"विश्वास या श्रद्धा दूसरेको अलंकृत करनेके लिये नहीं होती, वह अपने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये होती है। सेवा जिसकी की जाती है, उसकी तो हानि भी हो सकती है। लाभ उसीको होता है, जो सद्भावसे सेवा करता है। अतएव सेवा करते समय यह नहीं देखना चाहिये कि हम किसकी सेवा कर रहे हैं? भाव यह होना चाहिये कि सेवाके द्वारा हम अपना स्वभाव अच्छा बना रहे हैं; अर्थात् अपने स्वभावसे आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता आदि दोषोंको दूर कर रहे हैं। यह सेवा हमारे लिये गंगाजलके समान निर्मल एवं उज्ज्वल बनानेवाली है। वस्तुतः सेवाका फल कोई स्वर्गादिकी प्राप्ति नहीं है और न धन-धान्यकी। सेवा स्वयंमें सर्वोत्तम फल है।"

आर्यधर्ममें प्रतिष्ठित सत्यशील धर्मनिष्ठ माता, पिता, आचार्य, पति, अतिथि, अग्रज, राजा अवश्य ही सेव्य हैं। इनकी सेवासे देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणमें सन्निहित अहंता तथा ममताका शोधन सुनिश्चित है। प्रत्युपकारकी भावनाके बिना मानवोचित शीलकी सीमामें दीन-हीन-अनाश्रयकी सेवा सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी अद्भुत समर्चा है।

समष्टिसे पोषित निज जीवनका समष्टि हितमें उपयोग तथा विनियोग सर्वोपरि सेवा है। वेदान्त-प्रस्थानके अनुसार सृष्टि सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी अभिव्यक्ति और उनका अभिव्यंजक संस्थान है। ऐसा समझकर सर्वहितमें जीवनका उपयोग तथा विनियोग सर्वोपरि सेवा है।

परमाक्षर सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मके निरूश्वासकल्प शब्दब्रह्मात्मक वेदसे उद्भूत यज्ञ, दान, तप आदि स्ववर्णाश्रमोचित सत्कर्मका भगवदर्थ अनुष्ठान सर्वेश्वरकी समर्चा है।

सुपात्रको अन्नदान, वस्त्रदान, भवनदान, जलदान, उद्यानदान, आश्रयदान, कन्यादान, गोदान, विद्यादान और अभयदान पूर्तसंज्ञक सेवाके उत्तम प्रकल्प हैं।

श्रद्धापूर्वक प्रणाम, तत्परतापूर्वक परिप्रश्न और संयतेन्द्रियतासहित सेव्यकी सेवासे भोगवर्धक और भवतारक बोधकी समुपलब्धि सुनिश्चित है।

हिंसा, असत्य, चैर्य, व्यभिचार और परिग्रह सर्वप्राणियोंके प्रतिकूल होनेके कारण त्याज्य हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह सर्वप्राणियोंके अनुकूल होनेके कारण सेव्य हैं। सनातन वर्णाश्रमव्यवस्था इन्हें जीवनमें आत्मसात् करनेकी क्रमिक स्वस्थविधा है। अन्यथा अहिंसाके गर्भसे घोर हिंसा, सत्यके गर्भसे मिथ्याभाषण, अस्तेयके गर्भसे चैर्य, ब्रह्मचर्यके गर्भसे व्यभिचार और अपरिग्रहके गर्भसे अमित परिग्रहकी प्राप्ति सुनिश्चित है।

जीवकी चाहका विषय उसका वास्तवरूप सच्चिदानन्द है। अभिप्राय यह है कि प्राणी मृत्यु, अज्ञता तथा दुःखसे त्राण एवं अखण्ड सत्, चित् और आनन्दरूपसे अवशिष्ट रहना चाहता है। अतः सबके प्रति मृत्यु, अज्ञान तथा दुःखापहारक व्यवहार सेवाका सार्वभौम सिद्धान्त है। अभिप्राय यह है कि अपने और अन्योंके प्रति सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्के अविरुद्ध और अनुकूल व्यवहार सेवा है।

आदर्श सेवक देहगत प्राणके सदृश अहंता, आसक्ति तथा स्वार्थसे रहित सबका

पोषक होता है। आदर्श स्वामी सेवकके सर्वविध उत्कर्षकी भावनासे उसकी सेवा स्वीकार करता है। स्वामीके गुणगणोंकी सेवकमें प्राप्ति तथा व्याप्ति स्वाभाविक है। तदर्थ दैवी और ब्राह्मीसम्पत्सम्पन्न धर्मनिष्ठों और ब्रह्मनिष्ठोंकी सेवा कर्तव्य है। यही कारण है कि सनातन-

संस्कृतिमें शूद्रोंके वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण; वैश्योंके क्षत्रिय तथा ब्राह्मण; क्षत्रियोंके ब्राह्मण तथा ब्राह्मणोंके ब्रह्मर्षि और ब्रह्मर्षियोंके सगुण-निर्गुण ब्रह्म सेव्य हैं। उक्त रीतिसे सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर सबके आत्मीय तथा आत्मस्वरूप होनेके कारण सेव्य हैं। उनकी सेवाकी पात्रता प्राप्त करनेकी भावनासे सत्पुरुष सेव्य माने गये हैं।

सेवकधर्म सर्वाधिक कठोर माना गया है। शीत-उष्ण, भूख-प्यास, मान-अपमान, सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें समचित्तताके बिना; तद्वत् निद्रा-आलस्य-प्रमादरूप तामस, काम-क्रोध-लोभरूप राजस तथा सुखासक्ति और ज्ञानासक्तिरूप सात्त्विक मनोभावोंपर विजय प्राप्त किये बिना सेवकधर्मका निर्वाह सर्वथा असम्भव है। अतएव सेवककी सेवा द्वन्द्वातीत तथा गुणातीत होनेका स्वस्थ उपक्रम है। स्वामीके स्वभावका परिज्ञान अर्थात् उनकी प्रीति तथा प्रवृत्तिके विषयका बोध सेवकके लिये अत्यन्त आवश्यक है। तद्वत् अपने अधिकारकी सीमाका अंकन तथा स्वामीके स्वार्थ तथा हित साधनेकी भावना सेवकके लिये अत्यन्त अपेक्षित है। दुराग्रह सेवाधर्मका विलोपक है। सेवक समर्थ होनेपर भी स्वामीको प्राप्त होनेयोग्य श्रेय तथा यश स्वयं प्राप्त न करे, यह आवश्यक है। अभिप्राय यह है कि स्वामीकी भोग्यसामग्री, वस्त्राभूषण, अलंकार, स्त्री आदिका स्वयं भोक्ता न बनना, उनके द्वारा सम्पादित होनेयोग्य कार्यको स्वयं सम्पादित न करना, उन्हें मिलनेयोग्य श्रेय और यशको स्वयं प्राप्त न करना सेवकका धर्म है।

ध्यान रहे, कार्य चाहे लघु हो या गुरु, उसकी सिद्धिका एक ही साधक हेतु नहीं हुआ करता। जो किसी कार्य या प्रयोजनको अनेक प्रकारसे सिद्ध करनेकी कला जानता हो, वही कार्य-साधनमें समर्थ हो सकता है-

न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने।।

(वाल्मीकीय रामायण ५। ४१। ६)

कार्यकरणसंघातात्मक शरीररूप अधिष्ठानात्मक आश्रय, साधिष्ठान साभास बुद्धिसंज्ञक विज्ञानरूप कर्ता, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियसहित मनोरूप भिन्न-भिन्न विविध करण, कार्यसिद्धिके अनुरूप करणगत विविध पृथक् चेष्टा तथा देवानुग्रहसहित अनुकूल प्रारब्ध-संज्ञक पाँच कार्यसाधक सांख्यसम्मत अभ्यन्तर हेतु होते हैं। तद्वत् पृथ्वी, सहयोगी प्राणी, विविध उपकरण, कार्यसिद्धिके अनुरूप उपकरणगत विविध पृथक् चेष्टा तथा देवानुग्रहसहित अनुकूल प्रारब्ध-संज्ञक पाँच कार्यसाधक सांख्यसम्मत बाह्य हेतु होते हैं-

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।।
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।

(गीता १८। १३-१४)

अनन्य भगवद्भक्त तथा तत्त्वज्ञ मनीषी सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरसंज्ञक ब्रह्मको क्रिया, कारकरूप सर्वहेतु तथा फल समझकर उक्त हेतुओंका उपयोग करनेमें कुशल तथा परम फलरूप परमात्माको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

(गीता ४। २४)

ध्यान रहे, जो प्रधान कार्यके सम्पन्न हो जानेपर दूसरे बहुतसे कार्योंको भी सिद्ध कर लेता है और पहलेके कार्योंमें बाधा नहीं आने देता, वही कार्यको सुचारुरूपसे कर सकता है-

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति॥

(वाल्मीकीय रामायण ५। ४१। ५)

श्रीलक्ष्मणसरीखे सेवक राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोहके वशमें न होकर भगवान् श्रीरामसदृश सेव्य स्वामीकी सेवा करते हैं।

ज्ञाता, प्रयोक्ता तथा भोक्ता जीव स्वामी है। उसकी अध्यक्षतामें उसके लिये देहेन्द्रिय-प्राणान्तःकरण प्रयुक्त तथा विनियोग होते हैं, अतएव सेवक हैं। स्थूलदेह इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणका अभिव्यंजक संस्थान है। इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणसंज्ञक सूक्ष्मदेह मलिन सत्त्वात्मक कारणशरीरका अभिव्यंजक संस्थान है। कारणशरीर जीवका अभिव्यंजक संस्थान है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राणसंज्ञक पंच-ज्ञानेन्द्रियोंसे क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धका ग्रहण होता है।

सृष्टिसंचालनप्रक्रिया के अनुशीलनसे सेवाधर्मका रहस्य विदित होता है। जीवनको सुचारुरूपसे संचालित करनेके लिये ज्ञान, इच्छा और क्रियाका क्रम अपेक्षित है। ज्ञानेन्द्रियसहित बुद्धि ज्ञानशक्ति है। मन इच्छाशक्ति है। प्राणसहित कर्मेन्द्रिय क्रियाशक्ति है। इनके समुचित उपयोगसे कर्मसिद्धि सम्भव है। ज्ञाता, प्रयोक्ता तथा भोक्ता जीव स्वामी है। उसकी अध्यक्षतामें उसके लिये देहेन्द्रिय-प्राणान्तःकरण प्रयुक्त तथा विनियोग होते हैं, अतएव सेवक हैं। स्थूलदेह इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणका अभिव्यंजक संस्थान है। इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणसंज्ञक सूक्ष्मदेह मलिन सत्त्वात्मक कारणशरीरका अभिव्यंजक संस्थान है। कारणशरीर जीवका अभिव्यंजक संस्थान है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राणसंज्ञक पंच-ज्ञानेन्द्रियोंसे क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धका ग्रहण होता है। वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ तथा पायुसे क्रमशः वचन, आदान, गमन, आनन्द और विसर्गका सम्पादन होता है। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकारसंज्ञक अन्तःकरणसे क्रमशरू संकल्प, निश्चय, स्मरण तथा गर्वकी सिद्धि होती है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राणसंज्ञक पंच ज्ञानेन्द्रियोंके क्रमशरू दिक्, वात, सूर्य, वरुण, अश्विनी देवता हैं। वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ तथा पायुके क्रमशः अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति तथा मृत्यु देवता हैं। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकारसंज्ञक अन्तःकरणके क्रमशः चन्द्र, ब्रह्मा, वासुदेव (विष्णु) तथा शिव देवता हैं।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान पंच प्राण हैं। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय पंच उपप्राण हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू तथा शंखिनीसंज्ञक दस नाडियाँ हैं। इनमें प्राणोंका संचार होता है। इडा, पिंगला, सुषुम्णा-ये तीन मुख्य नाडियाँ हैं। क्रमशः सोम, सूर्य और अग्नि इनके देवता हैं।

देहव्यापी समान है। वह अग्निके सहित भुक्त अन्नरसादिका सम्पूर्ण शरीरमें संचार करता है। प्राणादिके प्रतापसे अग्निके ऊपर जल तथा जलके ऊपर व्यंजनसंयुक्त अन्नरसादि अग्निसंयुक्त जलसे परिपक्व होकर शरीरमें जीवनी-शक्तिका संचार करते हैं। निरूश्वास, उच्छ्वास और कास प्राणकर्म हैं। मलमूत्रादिविसर्जन अपानकर्म हैं। हानोपादानचेष्टादि व्यानकर्म हैं। देहका उन्नयनादि उदानकर्म हैं। शरीरपोषणादिक समानकर्म हैं। उद्गारादि नागकर्म हैं। निमीलनादि कूर्मकर्म हैं। क्षुत्करण कृकरकर्म है। तन्द्रा देवदत्तकर्म है। श्लेष्मादि धनंजयकर्म हैं। सर्वव्यापी धनंजय मृत देहका भी त्याग नहीं करता-

'न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।'

(योगचूडामण्युपनिषत् २६)

सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरके द्वारा सृष्ट उपादानभूत आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वीसहित उक्त अधिभूत (विषय), अध्यात्म (करण) और अधिदैव अपने अधिपति जीवके अभ्युदय और निःश्रेयससंज्ञक भोगापवर्गकी सिद्धिके लिये अर्थात् अर्थ, काम, धर्म और मोक्षसंज्ञक पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिये स्वयंको प्रयुक्त तथा विनियुक्त करते हैं-

बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥

(श्रीमद्भा० १०। ८७। २)

उक्त रीतिसे समग्र सृष्टिप्रकल्प सेवाधर्मका आदर्श स्वरूप है। अतएव 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिना-मप्यगम्यः' परम गहन सेवाधर्म योगियोंके लिये भी अगम्य है।

सेवा से परम कल्याण

ब्रह्मलीन
श्रीजयदयालजी गोयन्दका

यद्यपि परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषके शरीरमें भी प्रारब्धके कारण उपर्युक्त दुःखोंकी प्राप्ति लोगोंके देखनेमें आ सकती है, तथापि वास्तवमें उसकी आत्मा सब दुरूखोंसे रहित ही है। उसमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है एवं शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणके साथ उसकी आत्माका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता, अतः उसके प्रारब्धसे होनेवाले शरीर-सम्बन्धी दुःखोंका होना कोई मूल्य नहीं रखता।

संसारके प्रायः सभी प्राणी दुःखमें निमग्न हैं। दुःखके दो भेद हैं-(१) लौकिक और (२) पारलौकिक। लौकिक दुःखभी तीन प्रकारके होते हैं-

(१) आधिभौतिक, (२) आधिदैविक और (३) आध्यात्मिक। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट, पतंग आदि प्राणियोंके द्वारा जो दुःख प्राप्त होता है, वह 'आधिभौतिक' दुःख है। वायु, अग्नि, जल, वृष्टि, देश, काल, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा आदिके अभिमानी देवताओंद्वारा जो दुःख प्राप्त होता है, वह 'आधिदैविक' दुःख है। 'आध्यात्मिक' दुःख दो प्रकारका होता है-(१) आधि एवं (२) व्याधि। आधिके भी दो भेद हैं-(१) मन-बुद्धिमें पागलपन, मृगी, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोग तथा (२) काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर, राग-द्वेष, ईर्ष्या, भय, छल-कपट, अहन्ता-ममता आदि अध्यात्म-विषयक हानि करनेवाले दुर्गुण। इन सबको तथा इसी प्रकारके अन्य मानसिक रोगोंको 'आधि' कहा जाता है। शरीर और इन्द्रियोंमें होनेवाले रोगोंको च्व्याधिज् कहते हैं एवं पारलौकिक दुःख है-मरनेके बाद परलोकमें या पुनरू इस लोकमें आकर नाना प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करना। परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे इन सभी प्रकारके दुरूखोंका सर्वथा अभाव होता है। परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे ही परमात्माकी प्राप्ति भी होती है। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर उपर्युक्त सभी दुःखोंका अत्यन्त अभाव होकर सदाके लिये परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

> **'परम सेवा' वह है, जो नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकते हुए मनुष्यको सदाके लिये सभी दुःखोंसे रहित करके परमात्माको प्राप्त करा देती है। भगवत्प्राप्त महापुरुषोंके द्वारा तो यह सेवा स्वाभाविक होती रहती है, साधक पुरुष भी उन महापुरुषोंके द्वारा स्वाभाविक होनेवाली परम सेवाको साधन मानकर कर सकता है।**

वह परमात्माका यथार्थ ज्ञान ईश्वरकी भक्ति, सत्पुरुषोंके संग, गीतादि शास्त्रोंके स्वाध्याय, निष्काम कर्म, ध्यानयोग और ज्ञानयोग आदिके साधनसे होता है। इनमेंसे ईश्वर-भक्तिपूर्वक निष्काम कर्मका कुछ विषय नीचे बतलाया जाता है। श्रीभगवान् सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें विराजमान हैं। इसलिये सबकी सेवा भगवान की सेवा है। गीता (१८। ४६ में) कहती है-

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको पा लेता है।'

उपर्युक्त सेवा सिद्ध पुरुषोंद्वारा तो स्वाभाविक ही होती रहती है। साधकके लिये सिद्ध पुरुषके गुण और आचरण ही अनुकरणीय हैं। अतः साधकको उनके गुण और आचरणोंका लक्ष्य रखकर उनके अनुसार साधन करना चाहिये। ऐसे सिद्ध प्रेमी भक्तोंके लक्षण भगवान्ने

गीताके बारहवें अध्यायके १३वें से १९वें श्लोकतक बतलाये हैं तथा उनके अनुसार चलनेवाले भक्तको भगवान्ने अपना 'प्रियतम' कहा है-

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।

(१२।२०)

'परंतु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतका निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।'

अतः सबमें भगवान्को व्याप्त समझकर भगवान की आज्ञाके अनुसार उनके नाम-रूपको याद रखते हुए निष्कामभावसे सबकी सेवा करनी चाहिये। उस सेवाके दो रूप होते हैं-(१) सामान्य सेवा और (२) परम सेवा।

भूकम्प, बाढ़, अकाल, अग्निकाण्ड आदिसे कष्ट प्राप्त होने या रोग आदिसे ग्रस्त होने अथवा अन्य किसी कष्टके कारण जो दुखी, अनाथ और आर्त हो रहे हैं, उन स्त्री-पुरुषोंका दुःख निवृत्त करनेका और उनको सुख पहुँचानेका नाम 'सेवा' है। इस लौकिक सेवाके अनेक प्रकार हैं, जैसे-(१) कोई बीमार-आतुर व्यक्ति सडकपर पड़ा है। उसके पास खाने-पीनेको भी कुछ नहीं है, वस्त्र भी नहीं है और स्थान भी नहीं है तथा न दवा और पथ्यका साधन ही है। ऐसे व्यक्तिको चिकित्सालयमें भर्ती करवाकर या कहीं भी रखकर अन्न-वस्त्र और चिकित्सा, दवा, पथ्य आदिका प्रबन्ध स्वयं कर देना अथवा करवा देना। इस प्रकार धनहीन, गरीब, अनाथ बीमारोंकी सेवा करना बहुत ही उत्तम है। अतः प्रत्येक भाईको यह सेवाकार्य करना चाहिये। धर्मार्थ चिकित्सा-संस्थाओंमें काम करनेवाले एवं निष्कामी वैद्योंको ऐसा नियम रखना चाहिये कि बीमार आदमियोंसे संस्थामें तो फीस लें ही नहीं, घरपर जाकर भी फीस न लेनेकी उदारता बरतें।

(२) किसी अग्निकाण्ड या बाढके कारण जिसका घर-द्वार जल गया या बह गया हो और जिसके खाने-पीने-पहननेका कोई प्रबन्ध न हो, उसका प्रबन्ध स्वयं कर देना या दूसरोंसे करवा देना।

(३) भूकम्पके कारण जिनके मकान और सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी हो, स्त्री-बाल-बच्चे दबकर मर गये हों या स्त्रियाँ एवं बाल-बच्चे बिना स्वामीके हो गये हों, उनके खान-पान और स्थान आदिका प्रबन्ध स्वयं कर देना या करवा देना।

(४) जिनके न माता-पिता हैं, न कोई अन्य अभिभावक हैं, ऐसे नाबालिक लडके- लड़कियोंको अनाथालयमें या और कहीं रखकर उनके खान-पान और पढ़ाई आदिकी व्यवस्था कर देना।

(५) गरीबीके कारण यदि कोई अपनी कन्याका विवाह करनेमें असमर्थ हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार सहायता देना या दिलवाना।

(६) किसी विधवा स्त्रीके खाने, पीने, पहनने आदिकी व्यवस्था न हो तो उसके खान-पान आदिकी व्यवस्था कर देना या करवा देना।

आजकल गरीब घरोंकी विधवा माता-बहनोंको तो खान-पान और जीवन-निर्वाहका कष्ट है ही, बहुत-सी धनी घरोंकी विधवा स्त्रियोंका भी ससुराल या नैहरमें आदर नहीं है। घरवालोंका उनके प्रति सेवाभाव न होनेके कारण उनको वे भाररूप प्रतीत होती हैं। इसलिये उनका सभी जगह तिरस्कार होता है। उन विधवाओंके पास जो भी गहना या नकद रुपया होता है, उसे यदि वे ससुराल या नैहरमें जमा करा देती हैं तो कोई-कोई तो उनके रुपयों और गहनोंको हड़प ही जाते हैं। यह परिस्थिति कई जगह देखी जाती है। इसलिये माता-बहनोंको अपना गहना बेचकर रुपया बैंकमें जमा रखना चाहिये या अच्छे डिवेंचर ले लेने चाहिये, चाहे उनका ब्याज कम ही मिले।

विधवा माता-बहनोंसे प्रार्थना है कि उनको अपना जीवन विरक्त पुरुषोंकी भाँति ज्ञान-वैराग्य-सदाचारमें और भजन-ध्यान आदि ईश्वरकी भक्तिमें तथा मन-इन्द्रियोंके संयमरूप तपमें बिताना चाहिये एवं नैहर और ससुरालमें सबकी निष्काम सेवा करना-जैसे घरमें रसोई बनाना, सीने-पिरोने आदिका काम करना उनके लिये परम उपयोगी है। घरका काम-धन्धा किये बिना भोजन करना अनुचित है। इस प्रकार निष्काम सेवाभावसे कार्य करनेपर अन्तःकरण भी शुद्ध होता है और नैहर तथा ससुरालके लोग भी प्रसन्न रहते हैं। विधवाओंके लिये प्रधान बात है-प्रातःकाल और सायंकाल एकान्तमें बैठकर जप, ध्यान और स्वाध्याय आदि करना तथा शयनके समय भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभावको याद करते हुए सोना एवं काम करते समय भी उस कामको भगवान का काम समझते हुए निःस्वार्थ भावसे हर समय भगवान्को याद रखते हुए ही भगवत्प्रीत्यर्थ काम करनेका अभ्यास डालना। भगवान्ने गीता (८।७)-में कहा है-

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

इसी प्रकार अन्य स्त्री-पुरुषोंको भी विधवा माता-बहनोंके साथ उत्तम व्यवहार एवं उनकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि अपने धर्मका पालन करनेवाली विधवा स्त्रीकी सेवा दुखी, अनाथ, आतुर और गायकी सेवासे भी बढकर है। इसके विपरीत उसको कष्ट देना तो महान् हानिकर है; क्योंकि दुखी विधवा स्त्रीकी दुराशिष खतरनाक होती है। इसी तरह और भी जो किसी भी कारणसे दुखी हैं, उनका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करना सेवा है।

(७) गाय, बैल, साँड़ आदि जो मूक पशु चारा, पानी, स्थान आदिके अभावमें दुखी हों या रोगी और वृद्ध हो जानेके कारण जिनका पालन उनका स्वामी नहीं कर रहा हो, उनका प्रबन्ध करना भी उत्तम सेवा है। (मूक प्राणीकी सेवा मुखरकी सेवासे महत्तर है।)

इसी प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि जीवमात्रकी रक्षा करना, उनको दुःखसे बचाकर सुख पहुँचाना-यह सब च्लौकिक सेवाज् है। यह च्लौकिक सेवाज् भी अभिमान और स्वार्थका त्याग करके भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे करनेपर च्परम सेवाज् के रूपमें परिणत हो जाती है। अस्तु!

'परम सेवा' वह है, जो नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकते हुए मनुष्यको सदाके लिये सभी दुःखोंसे रहित करके परमात्माको प्राप्त करा देती है। भगवत्प्राप्त महापुरुषोंके द्वारा तो यह सेवा स्वाभाविक होती रहती है, साधक पुरुष भी उन महापुरुषोंके द्वारा स्वाभाविक होनेवाली परम सेवाको साधन मानकर कर सकता है। यद्यपि किसी भी मनुष्यका कल्याण करनेकी सामथ्र्य साधकोंमें नहीं होती, फिर भी सर्वशक्तिमान् भगवान की आज्ञा, दया और प्रेरणाका आश्रय लेकर, कर्तापनके अभिमानसे रहित हो वह 'परम सेवा' में निमित्त तो बन ही सकता है।

'परम सेवा' वह है, जो नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकते हुए मनुष्यको सदाके लिये सभी दुःखोंसे रहित करके परमात्माको प्राप्त करा देती है। भगवत्प्राप्त महापुरुषोंके द्वारा तो यह सेवा स्वाभाविक होती रहती है, साधक पुरुष भी उन महापुरुषोंके द्वारा स्वाभाविक होनेवाली परम सेवाको साधन मानकर कर सकता है। यद्यपि किसी भी मनुष्यका कल्याण करनेकी सामथ्र्य साधकोंमें नहीं होती, फिर भी सर्वशक्तिमान् भगवान की आज्ञा, दया और प्रेरणाका आश्रय लेकर, कर्तापनके अभिमानसे रहित हो वह 'परम सेवा' में निमित्त तो बन ही सकता है।

इस 'परम सेवा' के भी कई प्रकार हैं; जैसे-

(१) संसारमें भटकते हुए मनुष्योंको जन्म-मरणसे रहित होनेके लिये शास्त्रके या महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदिकी शिक्षा देना।

(२) जो मरणासन्न मनुष्य गीता, रामायण आदि या भगवन्नाम सुनना चाहता हो, उसे वह सब सुनाना।

यह कार्य यज्ञ-दान, तप-सेवा, जप-ध्यान, पूजा-पाठ, सत्संग-स्वाध्यायकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वका है; क्योंकि ये सब साधन तो हम दूसरे समय भी कर सकते हैं, किंतु जो मरणासन्न है, उसे भगवद्विषयक बातें सुनानेका काम उसके मरनेके बाद तो हो नहीं सकता। किसी मरणासन्न मनुष्यको जप-ध्यान, पूजा-पाठ, सत्संग-स्वाध्याय आदि करानेसे उसका मन यदि भगवान्में लग जाय तो उसका कल्याण उसी समय हो सकता है। भगवान्ने (गीता ८।५ में) कहा है-

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

'जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है।' अतः इस प्रकार प्रयत्न करते-करते यदि एक मनुष्यका भी कल्याण हमारे द्वारा हो गया तो हमारा यह जन्म सफल हो गया; क्योंकि मनुष्यका जन्म आत्माका कल्याण करनेके लिये ही है। हम अपना कल्याण नहीं कर सके, किंतु हमारे द्वारा किसी एक मनुष्यका भी कल्याण हो गया तो हमारा यह जीवन भी सफल हो गया। हम भगवान्से कुछ भी नहीं माँगेंगे तो भी भगवान् हमारा कल्याण ही करेंगे; क्योंकि हम यह कार्य अभिमान, स्वार्थ और अहंकारसे रहित होकर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे कर रहे हैं। यदि हमारा बार-बार जन्म हो और हमें भगवान् यह काम सौंपें तो हमारे लिये यह मुक्तिसे भी बढक़र होगा। इसलिये ऐसा अवसर प्राप्त हो जाय तो उसे छोडऩा नहीं चाहिये। लाख काम छोडक़र यह काम सबसे पहले करना चाहिये; क्योंकि इस प्रकारके अत्यन्त आतुर मनुष्यकी परम सेवासे बढक़र मनुष्यके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है।

(३) गीता, रामायण, भागवत आदि धाघ्मक ग्रन्थ, कल्याण आदि धाघ्मक मासिक पत्र तथा महापुरुषोंके लेख, व्याख्यान, जीवन-चरित्र या उनके दिये हुए उपदेश-आदेशमय प्रवचन इत्यादि आध्यात्मिक साहित्यको विवाह, द्विरागमन आदि अवसरोंपर देना-दिलाना, साधु-महात्मा, विद्यार्थी आदिको देना-दिलाना अथवा उचित मूल्यपर या बिना मूल्य लोक-हितार्थ वितरण करना-कराना, ऋषिकुल, गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, हाईस्कूल, कालेज, विद्यालय, पाठशाला, जेलखाना, अस्पताल और आयुर्वेदिक चिकित्सालय आदिमें उपर्युक्त आध्यात्मिक साहित्यको मूल्य लेकर या बिना मूल्य वितरण करना-करवाना, दूकान खोलकर या लारियोंद्वारा ठेलोंद्वारा या स्वयं झोलेमें लेकर शहरों, गाँवों और बाहरी बस्तियोंमें अथवा मेला आदिमें उनका प्रचार करना-यह भी एक परमार्थ-विषयकी सेवा है। यह भी यदि अभिमान और स्वार्थका त्याग करके निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ की जाय तो 'परम सेवा' में परिणत हो जाती है।

इसलिये प्रत्येक मनुष्यको इस प्रचार-कार्यको अपने कल्याणके लिये परमात्माकी प्राप्तिके साधनका रूप देकर बड़ी तत्परता और उत्साहके साथ करना चाहिये।

सेवा का स्वरूप

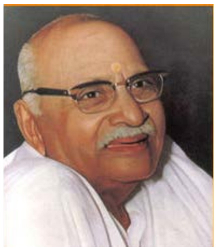

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

भगवान का भक्त, जो भगवान की सेवाको ही जीवनका स्वरूप बना लेता है, निरन्तर भगवत्सुखार्थ भगवान की सेवामें संलग्न रहता है। ऐसे सेवापरायण सेवकका कैसा भाव-स्वभाव होता है, भक्तराज प्रह्लादकी निम्नलिखित पावन वाणीमें उसके दर्शन कीजिये। भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीनृसिंहदेवने भक्तराज प्रह्लादसे जब वर माँगनेको कहा, तब प्रह्लादजी अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें भगवान्से कहते हैं-'भगवन्! मैं तो जन्मसे ही भोगासक्त हूँ, मुझे आप वरोंका प्रलोभन मत दीजिये। मैं तो भोगोंके संगसे डरकर उनके द्वारा होनेवाली तीव्र वेदनाका अनुभवकर उनसे छूटनेकी इच्छासे आपकी शरणमें आया हूँ। जगद्गुरो! आप मेरी परीक्षा ही करते होंगे, नहीं, तो दयामय! भोगोंमें फँसानेवाले वरकी बात आप मुझसे कैसे कहते? परंतु प्रभो'-

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्।।
आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः।।
अहं त्वकामस्त्वभक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव।।

(श्रीमद्भागवत ७। १०। ४-६)

'जो सेवक स्वामीसे अपनी कामनाएँ पूर्ण कराना चाहता है, वह चाकर-सेवक नहीं है, वह तो लेन-देन करनेवाला बनिया है। जो स्वामीसे कामनापूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं और जो सेवकसे सेवा करानेके लिये, उसका स्वामी बननेके लिये उसकी कामना पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं। मैं कोई भी कामना न रखनेवाला आपका सेवक हूँ और आप मुझसे कुछ भी अपेक्षा न रखनेवाले स्वामी हैं। हमलोगोंका यह सम्बन्ध राजा और उसके सेवकोंका प्रयोजनवश रहनेवाला स्वामी-सेवकका सम्बन्ध नहीं है।'

ऐसा केवल सेवाव्रती सेवक किस प्रकारका त्यागी होता है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कपिलदेवके रूपमें भगवान् कहते हैं-

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते।।

(श्रीमद्भागवत ३। २९। १३-१४)

'मेरे वे सेवक मेरी सेवाको छोडक़र दिये जानेपर भी सालोक्य (भगवान्के धाममें नित्य निवास), सार्ष्टि (भगवान्के समान ऐश्वर्यप्राप्ति), सामीप्य (भगवान की नित्य समीपता), सारूप्य (भगवान्के-से दिव्य रूप-सौन्दर्यकी प्राप्ति) और एकत्व (भगवान्के साथ मिल जाना-उनके साथ एक हो जाना या ब्रह्मरूपको प्राप्त होना)- इन पाँचों मुक्तियोंको ग्रहण नहीं करते। यह भक्तियोग ही साध्य है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणोंको लाँघकर मेरे भावको, दिव्य विशुद्ध भगवत्प्रेमको प्राप्त होता है।'

> **"किसी बड़े स्वार्थसाधनके उद्देश्यसे ही या बड़ा पदलाभ पानेके लिये ही किसीकी कुछ सेवा करना-जैसे अधिकारियोंकी सेवा, व्यक्तिगतरूपमें मन्त्रियों आदिकी सेवा, इसी लक्ष्यसे संस्थाओंको तथा राजनीतिक पार्टियोंको दान आदि देना, चुनावमें सहायता करना। चुनावमें जीतने या वोट पानेके लिये कहीं कुछ जनसेवा करके उसका विज्ञापन करना आदि। यह वास्तवमें न सेवा है, न दान। यह एक प्रकारसे थोड़ी पूँजी लगाकर बड़ा नफा करनेका व्यवसाय या जुआ है।"**

इन भगवान की सेवा किनमें कैसे करनी चाहिये? अवश्य ही अपने इष्ट भगवान्के मंगलविग्रह-स्वरूपकी (प्रतिमाकी) पूजा करना भी बड़ा श्रेयस्कर है, पर उतना ही पर्याप्त नहीं है। भगवान् आगे चलकर कहते हैं-

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्।।
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः।।

(श्रीमद्भागवत ३।२९।२१-२२)

'मैं आत्मारूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ, इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें मेरा पूजन करते हैं, वह पूजन विडम्बनामात्र है। मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी जीवोंमें स्थित हूँ, ऐसी स्थितिमें जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमाके पूजनमें ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्ममें ही आहुति डालता है।'

इसीलिये चराचर प्राणिमात्रमें भगवान्को देखकर उनकी सेवा करनी चाहिये।

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।'

यह भगवत्सेवा ही वास्तविक सेवा है। यही सबसे ऊँची प्रेमभृत्यता है। भगवान् इस प्रेमसेवाके दिव्य मधुर रसका आस्वादन करनेके लिये नित्य निष्काम तथा नित्य तृप्त होनेपर भी सकाम और अतृप्त हो जाते हैं। इस दिव्य परम सेवाका उपदेश महात्माओंके पुण्य जीवनसे प्राप्त होता है।

रुचि-वैचित्र्य, तम-रज-सत्त्व गुण तथा मनुष्यकी मानस स्थितिके अनुसार सेवाके निकृष्ट-उत्कृष्ट बहुत-से रूप लोकमें प्रचलित हैं। जैसे-सेवा करना नहीं, पर सेवक कहलाना, सेवकके रूपमें अपनेको व्यक्त करना। यह दम्भ, पाखण्ड और पाप है।

किसी बड़े स्वार्थसाधनके उद्देश्यसे ही या बड़ा पदलाभ पानेके लिये ही किसीकी कुछ सेवा करना-जैसे अधिकारियोंकी सेवा, व्यक्तिगतरूपमें मन्त्रियों आदिकी सेवा, इसी लक्ष्यसे संस्थाओंको तथा राजनीतिक पार्टियोंको दान आदि देना, चुनावमें सहायता करना। चुनावमें जीतने या वोट पानेके लिये कहीं कुछ जनसेवा करके उसका विज्ञापन करना आदि। यह वास्तवमें न सेवा है, न दान। यह एक प्रकारसे थोड़ी पूँजी लगाकर बड़ा नफा करनेका व्यवसाय या जुआ है।

अपनेको उपकार करनेवाला मानकर सेवाका अभिमान करके सेव्यको अपनेसे नीचा मानना, उसपर अहसान करना; उसके द्वारा कृतज्ञता तथा प्रत्युपकार प्राप्त करनेका अपनेको अधिकारी समझना और न मिलनेपर उसे कृतघ्न मानना यह भी शुद्ध सेवा नहीं है, व्यापार ही है।

सेव्यके सुख-हित या उसके मनके प्रतिकूल अपने इच्छानुसार बर्ताव करके उसको सेवाके नामसे सेव्यपर लादना-यह भी सेवाकी विडम्बना ही है।

सेवा करनेकी शुद्ध इच्छासे अपनेको प्राप्त तन-मन-धनके द्वारा यथायोग्य सेव्यके आवश्यकतानुसार सेवा करके प्रसन्नता या आत्मसंतोष प्राप्त करना-यह अच्छी सेवा है।

श्रद्धापूत हृदयसे सेव्यके सुख-हितके लिये अपनी इच्छाके विपरीत भी उसके मनोनुकूल सेवा करना तथा उसको सुखी देखकर परम सुखी होना-यह भी सराहनीय सेवा है।

अपनी प्राप्त वस्तुओंके द्वारा किसी अभावग्रस्तकी मूक सेवा करना, जिससे उसको यह पता भी न लगे कि यह सेवा कौन कर रहा है। कुछ वर्षों पूर्व एक अभावग्रस्त सम्भ्रान्त सज्जनने बताया था कि उनके पास घर-खर्चके लिये वर्षोंसे प्रतिमास विभिन्न नाम तथा स्थानोंसे अमुक रकम मनीआर्डरसे नियमित आती है, पर बहुत खोजनेपर भी भेजनेवालेका पता नहीं लगा। शबरीजी इसी भाँति छिपकर चोरीसे ऋषियोंके आश्रमोंमें प्रतिदिन झाड़ू लगाकर कुशकण्टक दूर किया करती थीं। इसमें ख्यातिसे भय रहता है और सेवक कहलानेमें संकोच तथा लज्जाका बोध। यह श्रेष्ठ सेवा है।

जो सेवा सेवाके लिये ही होती है, सेवा किये बिना चैन नहीं पड़ता; रहा नहीं जाता, जो आत्मसंतोषके लिये ही सहजभावसे होती है, यह बहुत श्रेष्ठ सेवा है।

चराचर प्राणिमात्रमें एक आत्मा मानकर अपने-आपकी सेवाकी भाँति आवश्यकतानुसार जो सब प्रकारकी सेवा होती है-यह श्रेष्ठ आत्मसेवा है। इसमें प्राणियोंके सुख-दुःखकी अपनेमें अनुभूति होती है। यह आत्म-तत्त्वज्ञानकी परिचायक उत्कृष्ट सेवा है।

जड-चेतन जीवमात्रमें भगवान्के स्वरूपका दर्शनकर भगवद्बुद्धिसे अपने प्रत्येक कर्मके द्वारा उनकी यथायोग्य सहज उत्साह-उल्लासपूर्ण सेवा होती है। उसके प्रत्येक कार्यसे जगत् चराचरके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् प्रसन्न होते हैं। यह सेवा उत्कृष्ट भगवत्पूजा है।

जिस सेवामें सेवकके अहंके सुख-कल्याणकी, स्वर्ग-मोक्षकी और दुःख-नरककी स्मृतिका ही सर्वथा अभाव रहता है; अपने प्रत्येक विचार, कर्म, पदार्थ आदिके द्वारा प्रियतमरूप भगवान्को सुख पहुँचाना ही जिसका अनन्य स्वभाव होता है, उसके द्वारा जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, वह भुक्ति-मुक्तिको नगण्य मानकर उनके महान् त्यागके परम पवित्र अनन्य मधुर धरातलपर होनेके कारण-परम प्रेमरूप सर्वोत्कृष्ट परम सेवा है। इस सेवाकी कहीं तुलना नहीं है।

भगवान् श्रीआद्यशंकराचार्य और उनका सेवा-दर्शन

अद्वैततत्त्वके प्रतिष्ठाता तथा भगवान् शंकरके अवतारस्वरूप श्रीशंकराचार्यकी महिमासे कौन अपरिचित है? आचार्यचरणका जिस समय आविर्भाव हुआ, उस समय भारतकी स्थिति विचित्र थी। सनातनधर्म प्रायः लुप्त हो चला था। वेदकी मर्यादा खण्डित हो चुकी थी। उसी समय केरलनिवासी पिता शिवगुरु तथा माता सुभद्राकी शंकरोपासनासे प्रौढ़ावस्थामें उन्हें एक दिव्य पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। आशुतोष भगवान् शंकरकी कृपासे बालकका जन्म हुआ था, अतः उसका नाम भी शंकर रख दिया गया। बालपनसे ही उनमें अद्भुत प्रातिभ एवं दिव्यज्ञान प्रविष्ट था। एक वर्षकी अवस्था होते-होते बालक शंकर अपनी मातृभाषामें अपने भाव प्रकट करने लगे और दो वर्षकी अवस्थामें मातासे पुराणादिकी कथाएँ सुनकर कण्ठस्थ करने लगे। उनके पिता तीन वर्षकी अवस्थामें उनका चूड़ाकर्म करके दिवंगत हो गये। पाँच वर्षमें यज्ञोपवीतकर उन्हें गुरुके घर पढ़नेके लिये भेजा गया और केवल आठ वर्षकी अवस्थामें ही वे वेद-वेदान्त और वेदांगोंका पूर्ण अध्ययन करके घर वापस आ गये। उनकी असाधारण प्रतिभा देखकर उनके गुरुजन दंग रह गये। उनमें जैसी अद्वैत ज्ञानकी निष्ठा थी, वैसी ही थी उनकी भक्तिनिष्ठा।

निर्गुण ब्रह्म और ज्ञानस्वरूपके निरूपणमें जहाँ वे स्वयं अद्वितीय ज्ञानके रूपमें प्रतिभासित होते दीखते हैं, वहीं सगुणरूपकी ऐकान्तिक उपासनामें वे देवशक्तियोंको प्रत्यक्ष देखते हुए-से प्रतीत होते हैं। उनमें उत्कट वैराग्य, अगाध भगवद्भक्ति, श्रद्धा, सेवा, मातृभक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य आदि अनेक गुणोंका दुर्लभ सांमजस्य था। यही कारण था कि केवल ३२ वर्षकी अल्पायुमें ही उन्होंने बड़े-बड़े अनेक प्रौढ़ ग्रन्थ रच डाले। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता, विष्णुसहस्रनाम, सनत्सुजातीय आदिके भाष्य बड़े ही विलक्षण हैं। ऐसे ही सौन्दर्यलहरी, प्रपंचसार, विवेकचूडामणि, उपदेशसाहस्री, प्रबोधसुधाकर, अपरोक्षानुभूति तथा आत्मबोध आदि ग्रन्थ बड़े ही उपयोगी तथा महत्त्वके हैं। देवताओंकी स्तुतिमें रचे गये स्तोत्र तो भक्तिसाहित्यके लिये सिरमौर ही हैं।

> बालक शंकर अभी अल्प अवस्थाके ही थे। विद्याध्ययनकाल पूर्ण हो चुका था, घर वापस आ गये थे, किंतु उनका मन संसारमें लगता था नहीं, अन्दर-ही-अन्दर ज्ञान एवं अनासक्तिकी तीव्र धारा प्रवाहित हो रही थी, रुकते रुकती थी नहीं, माताके प्रति अनन्य निष्ठा भी थी, उनके वात्सल्यभावको देखकर ये द्रवीभूत थे, उनसे संन्यासकी आज्ञा माँगें तो कैसे माँगे, अन्ततरू एक दिन साहसकर बालकने माताके सामने अपना प्रस्ताव रख ही दिया-माँ! मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। उस समय उनकी अवस्था आठ वर्षकी थी। माता रो पड़ीं और पुत्रको छातीसे लगा लिया, बोलीं-बेटा! तुम अभी बालक हो, मेरे मर जानेपर संन्यास लेना, तुम नहीं रहोगे तो मैं किसके सहारे रहूँगी। उस दिनकी बात आयी-गयी हो गयी। बालक शंकर बड़े ही धर्मसंकटमें फँस गये, इधर माताका स्नेह-बन्धन और उधर अवतरणके उद्देश्यका सम्पादन, जो बिना संन्यास लिये सम्भव नहीं था।

करुणाकी मूर्ति

सन्तशिरोमणि आचार्य शंकरमें भगवान् शंकरकी कृपासे जैसा वैदुष्य था, जैसी ज्ञान-वैराग्यकी, अनासक्तिकी प्रतिष्ठा थी, वैसा ही उनका हृदय अत्यन्त उदार एवं करुणासे परिपूर्ण था। जीवदया, भूतदया उनका महनीय गुण था। एक समयकी बात है जब बालक शंकर गुरुगृहमें विद्याभ्यासमें रत थे तो नियमके अनुसार भिक्षावृत्ति करते थे। एक दिन भिक्षाके लिये वे एक ब्राह्मणके घर पहुँचे। गृहस्थ बहुत निर्धन थे। भिक्षा देनेके लिये उनके पास कुछ भी न था। ब्राह्मणपत्नी बहुत दुखी हुईं, उन्होंने देखा कि घरमें आँवलेका एक फल रखा है, वे उसे ही लेकर द्वारपर आयीं और रोते-रोते वह फल भिक्षुक शंकरके हाथमें रख दिया। शंकर ब्राह्मणीके अन्तर्भावको समझ गये, वहीं उन्होंने खड़े-खड़े भगवती लक्ष्मीसे ब्राह्मणदम्पतीके दरिद्रनिवारणके लिये कातर प्रार्थना की। बालककी प्रार्थनासे साक्षात् लक्ष्मी प्रकट होकर बोलीं-वत्स! मैंने तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया है, किंतु इस निर्धन परिवारने पूर्वजन्मोंमें ऐसा कुछ पुण्यकार्य नहीं किया है, जिससे मैं इन्हें धन दे दूँ। तब बालक शंकर बोले-हे देवि! ब्राह्मणपत्नीने

अभी-अभी मुझे जो भिक्षामें आँवलेका फल दिया है, उस पुण्यका फल प्रदानकर कृपा करके आप इन्हें दारिद्र्यसे मुक्त करें। लक्ष्मीकी कृपा हो गयी। ब्राह्मणदम्पतीके घरमें सुवर्णके आँवलोंका अम्बार लग गया।

आचार्य शंकरकी मातृसेवा

श्रीशंकराचार्यकी अपनी मातामें अपूर्व श्रद्धा-भक्ति थी। वे उनकी सेवापरिचर्यामें निरत रहते थे। उनकी माताका नित्य नदीमें स्नान करनेका नियम था। स्नानके अनन्तर वे रास्तेमें कुलदेवता केशवके मन्दिरमें पूजा-अर्चना करके घर लौटती थीं। नदी घरसे थोड़ी दूरीपर थी। एक दिन उन्हें आनेमें काफी विलम्ब हो गया। इधर बालक शंकर बहुत चिन्तित हो गये, वे माँकी खोजमें चल पड़े, कुछ दूर जानेपर उन्होंने माताको मार्गमें अचेत पड़ा हुआ पाया। आने-जानेके श्रमसे माता बहुत थक गयी थी। बालक शंकर माताकी हालत देखकर रो पड़े और उनकी सेवा-सपर्यामें लग गये। चेतना लौट आनेपर वे माताको घर ले आये। उनका मन अधीर हो उठा। आँसू बहाते हुए वे भगवान् शंकरके चरणोंमें प्रार्थना करने लगे-प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् हैं, कुछ भी करनेमें समर्थ हैं, माँका कष्ट मुझसे देखा नहीं जाता, तीर्थजलमें स्नानका इनका नियम है, शरीर शिथिल है, नित्य उतनी दूर स्नानके लिये अब आना-जाना सम्भव नहीं दिखता, अतः आप कृपा करके नदीको घरके समीप ला दीजिये।

करुणामय भगवान् बालक शंकरकी करुण पुकार तथा उनकी मातृसेवाका उदात्त भाव देखकर विचलित हो उठे और उन्होंने नदीका मार्ग ही बदल दिया। यह देखकर माता अभिभूत हो बैठीं। आशीर्वादोंकी झड़ीसे बालक शंकर आप्लावित हो गये।

बालक शंकर अभी अल्प अवस्थाके ही थे। विद्याध्ययनकाल पूर्ण हो चुका था, घर वापस आ गये थे, किंतु उनका मन संसारमें लगता था नहीं, अन्दर-ही-अन्दर ज्ञान एवं अनासक्तिकी तीव्र धारा प्रवाहित हो रही थी, रुकते रुकती थी नहीं, माताके प्रति अनन्य निष्ठा भी थी, उनके वात्सल्यभावको देखकर ये द्रवीभूत थे, उनसे संन्यासकी आज्ञा माँगें तो कैसे माँगे, अन्ततरू एक दिन साहसकर बालकने माताके सामने अपना प्रस्ताव रख ही दिया-माँ! मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। उस समय उनकी अवस्था आठ वर्षकी थी। माता रो पड़ीं और पुत्रको छातीसे लगा लिया, बोलीं-बेटा! तुम अभी बालक हो, मेरे मर जानेपर संन्यास लेना, तुम नहीं रहोगे तो मैं किसके सहारे रहूँगी। उस दिनकी बात आयी-गयी हो गयी। बालक शंकर बड़े ही धर्मसंकटमें फँस गये, इधर माताका स्नेह-बन्धन और उधर अवतरणके उद्देश्यका सम्पादन, जो बिना संन्यास लिये सम्भव नहीं था।

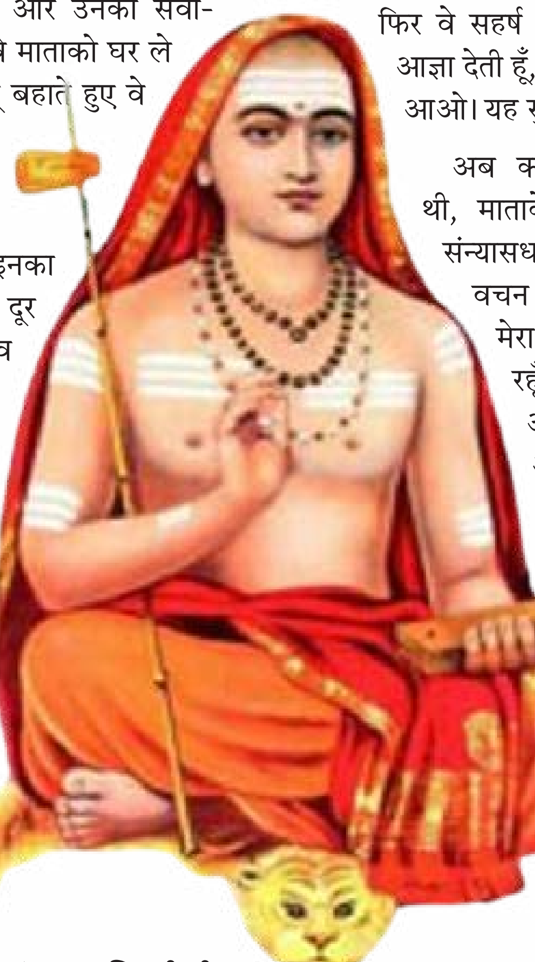

दो बार, तीन बार, कई बार बालकने प्रस्ताव रखा, किंतु माताका रुदन देख वे सहम जाते। अन्तमें एक दिनकी बात है। माताके साथ ये स्नान करने नदीमें गये। वहाँ एक मगरने इन्हें पकड़ लिया। पुत्रको कष्टमें देखकर माता रुदन करने लगीं। शंकरने मातासे कहा-माँ! मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दो तो यह मगर मुझे छोड़ देगा।ज् माताका वात्सल्य उमड़ पड़ा, पुत्रके जीवनकी रक्षा हो जाय, इससे बड़ा सुख माताके लिये और क्या हो सकता है! भले ही संन्यासी हो जाय, किंतु पुत्र तो जीवित रहेगा, यही सोचकर मैं जी लूँगी। माताने ऐसा निश्चय किया, फिर वे सहर्ष बोल पड़ीं-हाँ-हाँ बेटा, संन्यासकी मैं आज्ञा देती हूँ, तुम इस कालके मुखसे जल्दी मेरे पास आओ। यह सुनते ही मगरने छोड़ दिया।

अब क्या था, माताकी आज्ञा मिल चुकी थी, माताके भरण-पोषणका प्रबन्धकर शंकरने संन्यासधर्म स्वीकृत किया और माताको यह वचन दिया कि मातरू! आप जब कभी भी मेरा स्मरण करेंगी, उस समय मैं जहाँ कहीं रहूँ, दिन हो या रात, मैं तत्काल योगबलसे आपके पास उपस्थित हो जाऊँगा और मृत्युके पूर्व आपको इष्ट-दर्शन कराऊँगा। मैं यह मिथ्या वचन नहीं बोल रहा हूँ। आप धीरज रखें, प्रसन्नचित्तसे मुझे आशीर्वाद दें, जिससे मेरा संन्यासधर्म सार्थक और सफल हो।

शंकर अब आचार्य हो गये और धर्मरक्षणका अनुवर्तन चल पड़ा। समय बीतता चला गया। जब ये श्रृंगेरीमें थे, इन्हें प्रतीत हुआ कि माता मृत्युशय्यापर हैं और उनका स्मरण कर रही हैं। उन्हें माताको दिये वचनोंकी स्मृति हुई। फिर क्या था, वे शीघ्र ही अपने योगबलसे माँके पास पहुँच गये। माताके इच्छानुसार उन्हें विष्णुधाम प्राप्त कराया। इन्होंने माताको दिये वचनकी सत्यताको सिद्ध किया और माताका संस्कार सम्पन्न किया। इनकी अनन्य मातृभक्ति, मातृसेवा

जीवनमें सभीके लिये अनुकरणीय है।

एक संन्यासीमें किस प्रकारका तीव्र वैराग्य होना चाहिये, शम, दम, तितिक्षा और उपरतिका निर्वाह कैसे करना चाहिये, धर्मकी कैसे रक्षा और सेवा करनी चाहिये, त्याग, संयम, अनासक्ति और जीवन्मुक्तिका क्या स्वरूप है-यह जानना हो तो आचार्यचरणके जीवन-दर्शनको समझना चाहिये। ऋषिचर्या तथा सेवाधर्मके वे आदर्श प्रतिमान हैं।

आचार्य बताते हैं कि तीन चीजें संसारमें अत्यन्त दुर्लभ हैं। पहला है- मनुष्ययोनिमें जन्म होना, दूसरा है-संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा और तीसरा है महान् पुरुष का संग-ये भगवत्कृपा से प्राप्त होती हैं-

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

(विवेकचूडामणि ३)

सेवोपदेश

मनुष्यजन्म प्राप्तकर इसको सफल बनाना ही जीवनका उद्देश्य है। यही आचार्य शंकरके उपदेशोंका तात्पर्यविषयीभूत अर्थ है। यूँ तो आचार्यने अपने ग्रन्थोंमें ब्रह्मतत्त्वनिरूपण, आत्म-अनात्मविवेक तथा शम-दम-तितिक्षा-उपरतिकी साधनापर विशेष बल दिया है और ज्ञाननिष्ठाका निरूपण किया है, तथापि बीच-बीचमें लोकसंग्रहके निमित्त अनासक्तिपूर्वक किये जानेवाले कर्मोंका भी ख्यापन किया है। एक स्थलपर वे माता-पिताकी सेवाको तथा उनके आज्ञापालनको महत्त्व देते हुए उन्हें देवस्वरूप मानकर उनके प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा रखकर उनमें पूज्यभाव रखनेकी आज्ञा देते हैं। प्रश्नोत्तररत्नमालिकामें वे स्वयं प्रश्न करते हैं और उत्तर भी देते हैं। यथा-

प्रत्यक्षदेवता का माता पूज्यो गुरुश्च कस्तातः। (६२)

अर्थात् प्रत्यक्ष देवता कौन है? माता। पूजनीय कौन है, कौन गुरु है? इसके उत्तरमें वे बताते हैं कि पिता ही पूज्य हैं और गुरु भी हैं।

इस संसारमें किस-किसकी सेवा-उपासना करनी चाहिये, इस प्रश्नके उत्तरमें वे स्वयं कहते हैं-गुरु, देवता और वृद्धजनोंकी सेवा-उपासना करनी चाहिये-'**के के ह्युपास्या गुरुदेववृद्धाः।**' (प्रश्नोत्तरमणिरत्नमाला २३) इस संसारमें धन्य कौन है? इसके उत्तरमें वे कहते हैं, जो दूसरोंका उपकार करता है, भलाई करता है, दूसरोंकी सेवामें निरत रहता है, उसीका जीवन सफल है, वही धन्य है, कृतार्थ है, क्योंकि स्वार्थ-सम्पादन तो सभी करते हैं, परमार्थसम्पादन हो तो यही वैशिष्ट्य है-

'**धन्योऽस्तु को यस्तु परोपकारी**'। (प्रश्नोत्तरमणिरत्नमाला १३)

आचार्यका मानना है कि जो दीनोंपर दया करता है, दुखियोंके दुःख दूर करनेका प्रयत्न करता है, ऐसे जनको देवता भी नमस्कार करते हैं, वह देवताओंके लिये भी वन्द्य हो जाता है-'**कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दयाप्रधानाय**' (प्र० रत्नमालिका १९)। प्राणियोंका हित करना इसे आचार्य सत्य कर्म-सच्चा कर्म-सात्त्विक कर्म बताते हैं-'**सत्यं च किं भूतहितं सदैव**' (प्र० मणिरत्नमाला २२)।

आचार्य शंकर कहते हैं कि भगवान् मुरारिको जो प्रिय हो, ऐसा कर्म करना चाहिये। अपने सेव्य, उपास्यको जैसे सुख मिले, वही कर्म करना चाहिये, स्वसुखवांछाको लेकर कोई कर्म नहीं करना चाहिये-'**किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः**' (प्र० मणिरत्नमाला ३१)।

केवलाघो भवति केवलादी

एक महत्त्वपूर्ण उपदेशमें वे सेवा-धर्मका निरूपण करते हुए कहते हैं-देवताओं, अतिथियोंको अर्पित करनेके अनन्तर शेष बचा हुआ अन्न (भोजन) अमृतस्वरूप है, इसके विपरीत अन्न पापरूप है। जो केवल अपने लिये ही भोजन आदि पकाता है, वह उसके लिये मृत्युरूप ही है। इस संसारमें जो केवल अपना ही पेट भरता है, अकेले ही खाता है, दूसरोंको नहीं देता, न खिलाता ही है, वह पापी है, वह अघ (पाप)-का ही भक्षण करता है। जो पंचबलि कर्म तथा बलिवैश्वदेव किये बिना, अतिथियोंको भोजन कराये बिना अपने आश्रितजनोंको सन्तुष्ट किये बिना भोजन करता है, वह मृत्युको वरण करनेके समान है-

अन्नं देवातिथिभ्योऽर्पितममृतमिदं चान्यथा मोघमन्नं
यश्चात्मार्थं विधत्ते तदिह निगदितं मृत्युरूपं हि तस्य।
लोकेऽसौ केवलाघो भवति तनुभृतां केवलादी च यः स्यात्
त्यक्त्वा प्राणाग्निहोत्रं विधिवदनुदिनं योऽश्नुते सोऽपि मर्त्यः॥

(शतश्लोकी २०)

निःस्वार्थसेवासे चित्तकी प्रसन्नता (पवित्रता)

चित्तकी प्रसन्नता (मनःप्रसाद) कैसे प्राप्त होती है, इसके साधनोंमें आचार्यने सेवा-धर्मका ही प्रामुख्य माना है। वे कहते हैं-ब्रह्मचर्यके पालन, अहिंसा, सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया, सरलता, इन्द्रिय भोगोंमें वितृष्णा, बाह्याभ्यन्तर शौच, दम्भराहित्य, सत्य, ममताराहित्य, स्थिरता, अभिमानशून्यता, ईश्वरमें ध्यान, ब्रह्मवेत्ताजनोंके साथ निवास, शास्त्रनिष्ठा, दुःख-सुख दोनोंमें समत्व, मान-अपमानसे परे रहना, अनासक्ति, एकान्तशीलता तथा मोक्षके प्रति जिज्ञासा जिसको रहती है, उसका चित्त सर्वदा प्रसन्न रहता है, वह आत्मानन्दमें रमण करता है-

'यस्यैतद्विद्यते सर्वं तस्य चित्तं प्रसीदति।'

(सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह १०८)

सेवाके दो सूत्र

सेवाधर्मके दो सूत्र-अहिंसा और दयाको व्याख्यायित करते हुए आचार्यचरणका कहना है कि शरीर-मन तथा वाणीद्वारा किसी भी प्राणीको दुःख न पहुँचाना अहिंसा है और सभी प्राणियोंको अपने ही समान समझते हुए मन-वाणी-शरीरसे सबपर अनुकम्पा रखनेको वेदान्तविदोंके द्वारा च्दयाज् कहा गया है-

अहिंसा वाङ्मनः कायैः प्राणिमात्राप्रपीडनम्।
स्वात्मवत्सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा।।
अनुकम्पा दया सैव प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः।

(सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह १११-११२)

जो सभी प्राणियोंमें स्वात्मशुद्धि रखते हुए उन्हें अपने ही समान देखता है और उनके साथ सुख-दुःखका विवेककर हितकर व्यवहार करता है, उसके चित्तमें सदा ही प्रसन्नता भरी रहती है-

आत्मवत्सर्वभूतेषु यः समत्वेन पश्यति।
सुखं दुःखं विवेकेन तस्य चित्तं प्रसीदति।।

(सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह ३६६)

करुणाहृदय शंकराचार्यजी इसीलिये अनेक स्थलोंपर प्राणियोंके कल्याण-कामनामें निरत दिखते हैं। अपने षट्पदीस्तोत्रमें वे भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! आप भूतदयाका विस्तार करें-'भूतदयां विस्तारय।'

भगवत्सेवा

भगवत्सेवाका क्या स्वरूप है और श्रेष्ठ भगवद्भक्तों-हरिदासवर्योंके क्या लक्षण हैं, इसे बताते हुए आचार्य अपने प्रबोधसुधाकर ग्रन्थमें कहते हैं-अपने आश्रमधर्मोंका परिपालन, भगवद्विग्रहका नित्य अर्चन, भगवद्भक्तोंकी नित्य सन्निधि, भगवत्कथाश्रवण, सत्यभाषण, उत्सवोंका आयोजन, परस्त्री, परद्रव्य तथा परनिन्दासे विरति, ग्राम्यधर्म- सम्बन्धी (अश्लील) कथाओंके श्रवणमें उद्वेगप्राप्ति, तीर्थोंमें गमन, यदुपति भगवान की कथाको न सुन पाना-इसे व्यर्थमें आयु चली गयी ऐसा समझकर इस बातका बार-बार चिन्तन करना-यह स्थूल भक्ति (सगुण भक्ति)-के लक्षण हैं। इसी कृष्णकथा-श्रवणके अनुग्रहसे सूक्ष्म भक्ति (निर्गुणभक्ति) उत्पन्न होती है, जिससे भगवान् श्रीहरि अन्तरूकरणमें प्रवेश करते हैं। ऐसे हरिके श्रेष्ठ दासों (सेवकों)-के क्या लक्षण हैं? इसपर वे कहते हैं-समस्त प्राणियोंमें भगवान की स्थिति, समस्त प्राणियोंसे अद्रोह और उनपर अनुकम्पा, यदृच्छासे प्राप्तमें सन्तोष, निर्ममत्व, निरहंकारित्व, क्रोधराहित्य, मृदुभाषण, निन्दा एवं स्तुतिमें समभाव, सुख-दुरूख, शीत, ऊष्ण आदि द्वन्द्वोंमें सहिष्णुता, दुरूखसे भयभीत न होना, विषयोंसे अनासक्ति, निद्रा, आहार-विहारमें अनादरबुद्धि, कृष्णस्मरणमें शाश्वत आनन्दकी प्राप्ति, हरिकीर्तन एवं वेणुनादश्रवणमें आनन्दाविर्भाव और सात्त्विक उद्रेक आदि भगवत्सेवीके लक्षण हैं। भगवान् शंकराचार्य कहते हैं, इस प्रकारकी स्थिति एवं अनुभूति जब स्थिर हो जाती है, तब वह सेवक धीरे-धीरे सभी प्राणियोंमें भगवद्भाव और भगवान्में सभी प्राणियोंकी स्थितिको देखने लगता है और तभी वह भगवान का सच्चा सेवक, सच्चा भक्त कहलाता है-

जन्तुषु भगवद्भावं भगवति भूतानि पश्यति क्रमशः।
एतादृशी दशा चेत्तदैव हरिदासवर्यरू स्यात्।।

(प्रबोधसुधाकर १८३)

सेवा धर्म का पावन अधिष्ठान श्रीरामचरितमानस

डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह

भारतीय आर्ष परम्पराका गौरवग्रन्थ श्रीरामचरितमानस सेवा-धर्मका पावन अधिष्ठान है। मानसमें आद्योपान्त सेवा-धर्मका सांगोपांग व्यावहारिक निरूपण हुआ है। इस सेवा-धर्मको गौरवान्वित तथा मर्यादित करनेके लिये परात्पर परब्रह्म श्रीराम इस धराधामपर अवतरित हुए। श्रीरामचरितमानस मूलतः भक्तिप्रधान ग्रन्थ है। 'भज सेवायाम' से निष्पन्न भक्ति पदका मुख्य अर्थ सेवा ही है। मानसके सारे भक्त भक्तवत्सल राघवेन्द्रके प्रति अपने अभिन्न और विभिन्न सेवा-धर्मका भक्त्यात्मक परिचय देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने सेवा-धर्मकी महत्ताको मानसके विभिन्न प्रसंगोंमें अत्यन्त कुशलतासे अभिव्यक्त किया है।

“श्रीभरतजी भगवान् श्रीरामके आदर्श भावुक सेवक हैं तो श्रीलक्ष्मणजी प्रत्यक्ष जीवनके व्यक्तिगत सेवक हैं। यही हेतु है कि श्रीभरतजी भगवान् श्रीरामकी प्रत्यक्ष उपस्थितिके बिना भी अहर्निश पादुकाकी सेवामें निरत हैं, परंतु व्यक्तिगत प्रत्यक्ष सेवाके आग्रही श्रीलक्ष्मणजी वनमें साथ-साथ चलकर सेवारत हैं। माता सुमित्राने श्रीलक्ष्मणजीको वन जाते समय श्रीसीतारामकी सेवाका जो तात्त्विक-मार्मिक उपदेश किया है, वह अत्यन्त प्रेरक और प्रासंगिक है।”

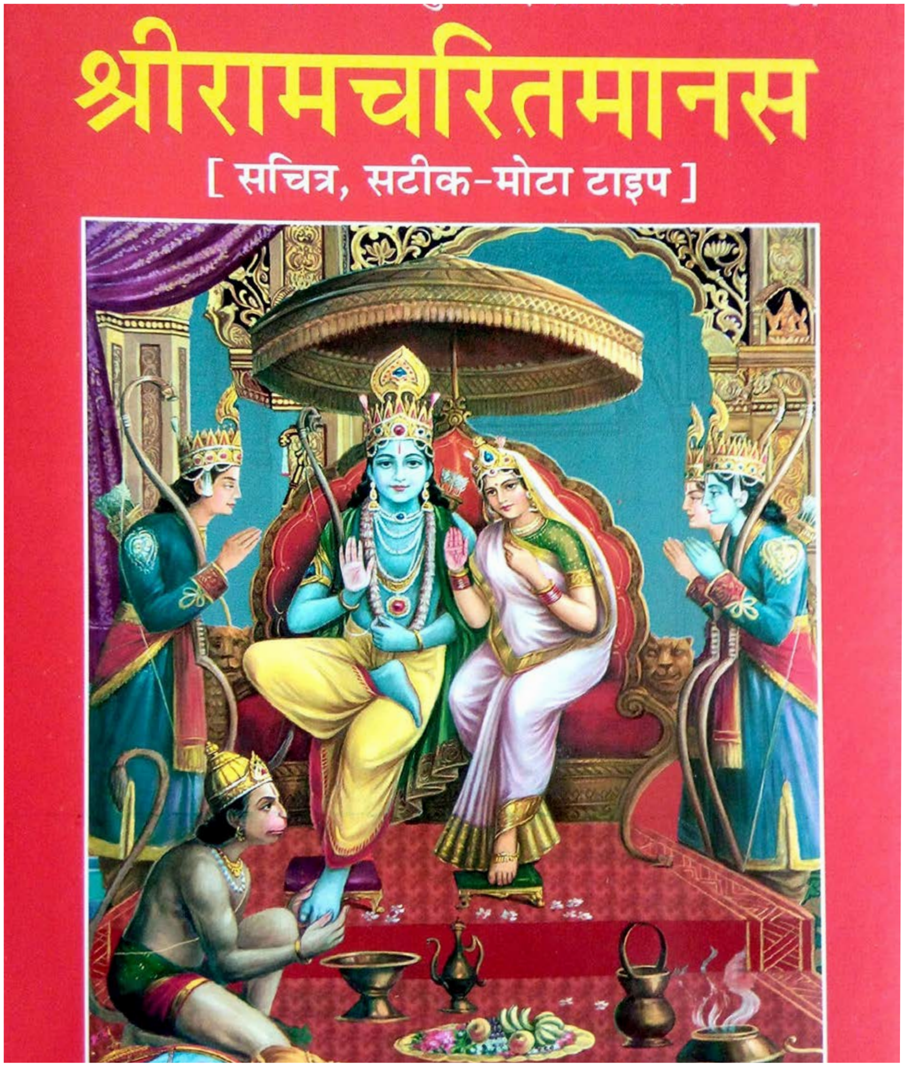

सर्वप्रथम अयोध्याजीमें जब श्रीरामचरितमानस प्रकाशित हुआ तो गोस्वामीजी कहते हैं-

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा।।

(रा०च०मा० १।३४।७)

अर्थात् असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्याजीमें आकर श्रीरघुनाथजीकी सेवा करते हैं। इस सेवा-धर्मका विस्तार तीनों लोकोंतक हुआ है। असुर और नाग पाताललोकसे आते हैं। खग, नर और मुनि मर्त्यलोकवासी हैं और देवता स्वर्गसे आते हैं। इस पावन अवसरपर सभीका आगमन सेवाभावसे होता है। श्रीरामजन्मके समय ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है-

अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा।
बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा।।

(रा०च०मा० १।१९१।८)

इसी प्रकार श्रीसतीजी जब प्रभु श्रीरामकी दिव्य विचित्र लीलाको वनमें देखती हैं तो हतप्रभ हो जाती हैं-

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना।।
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका।।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा।।

(रा०च०मा० १।५४।६-८)

यहाँ शिव, विष्णु एवं ब्रह्मादि देवता भी श्रीरामचन्द्रजीकी चरण-वन्दना और सेवा कर रहे हैं। इस प्रसंगमें सेवा-धर्मका परमोच्च दिग्दर्शन हुआ है।

श्रीरामचरितमानसमें सेवा-धर्मके तीन वरेण्य पात्र हैं-श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीहनुमान्जी। श्रीभरतजी मानसके एक ऐसे आदर्श पात्र हैं, जिनका सेवा-धर्म संत और भगवन्त दोनोंको अभिभूत कर देता है। श्रीभरतजी सेवा-धर्मके पर्याय हैं। जब अयोध्याजीसे श्रीभरतजी पाँव पयादे श्रीरामसे मिलने चलते हैं तो सेवकद्वारा रथपर चलनेके आग्रहको ठुकराते हुए कहते हैं कि मेरे लिये उचित तो यह है कि मैं सिरके बल चलकर जाऊँ। सेवकका धर्म सबसे कठिन होता है-

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा।
सब तें सेवक धरमु कठोरा।।

(रा०च०मा० २।२०३।७)

चित्रकूटकी सभामें श्रीभरतजी कहते हैं-

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
सेवाधरमु कठिन जगु जाना।।

(रा०च०मा० २।२९३।७)

अर्थात् वेद, शास्त्र और पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत् जानता है कि सेवा-धर्म बड़ा कठिन है। भर्तृहरिनीतिशतकके अनुसार-

'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।'

(५८)

सेवा-धर्म कठिन इसलिये है कि 'स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू।' अर्थात् स्वामीधर्मसे स्वार्थका विरोध है।

श्रीभरतजी स्वयं सेवक धर्मको व्याख्यायित करते हुए कहते हैं-

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा।।

(रा०च०मा० २।३०१।३-४)

अर्थात् कपट, स्वार्थ और अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप चारों फलोंको छोड़कर स्वाभाविक प्रेमसे स्वामीकी सेवा करना-यही मेरी रुचि है। आज्ञापालनके समान श्रेष्ठ स्वामीकी और कोई सेवा नहीं है। हे देव! अब वही आज्ञारूप प्रसाद सेवकको मिल जाय।

श्रीभरतजीका यही सेवा-धर्म उन्हें महत्तम सेवकका पद प्रदान करता है। श्रीभरतजीके ये वचन सेवा-धर्मके परमादर्श हैं। यही हेतु है श्रीभरतजीके अतिशय प्रेम-प्रभावको देखकर गुरु बृहस्पतिने देवराज इन्द्रसे कहा-

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा।।
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई।।

(रा०च०मा० २।२१९।१-२)

अर्थात् हे देवराज! हमारा उपदेश सुनो। श्रीरामजीको अपना सेवक परमप्रिय है। वे अपने सेवककी सेवासे सुख मानते हैं और सेवकके साथ वैर करनेसे बड़ा भारी वैर मानते हैं।

मानसमें श्रीभरतजीका सेवा-धर्म इतना निष्काम, निष्कलुष और छल-कपटरहित है कि न केवल कुलगुरु श्रीवसिष्ठजी वरन् देवगुरु बृहस्पति भी उनके इस स्वभावकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। भरतचरितका यह प्रसंग मानसके सेवा-धर्मका हृदय है।

श्रीभरतजी भगवान् श्रीरामके आदर्श भावुक सेवक हैं तो श्रीलक्ष्मणजी प्रत्यक्ष जीवनके व्यक्तिगत सेवक हैं। यही हेतु है कि श्रीभरतजी भगवान् श्रीरामकी प्रत्यक्ष उपस्थितिके बिना भी अहर्निश पादुकाकी सेवामें निरत हैं, परंतु व्यक्तिगत प्रत्यक्ष सेवाके आग्रही श्रीलक्ष्मणजी वनमें साथ-साथ चलकर सेवारत हैं। माता सुमित्राने श्रीलक्ष्मणजीको वन जाते समय श्रीसीतारामकी सेवाका जो तात्त्विक-मार्मिक उपदेश किया है, वह अत्यन्त प्रेरक और प्रासंगिक है। माताने कहा-हे तात! तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामजी वनको जा रहे हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो। राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह इनके वश स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंको त्यागकर मन, वचन और कर्मसे

श्रीसीतारामजीकी सेवा करना। तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और श्रीसीताजीरूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पायें, मेरा यही उपदेश है-

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।।
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।।
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू।।
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू।।

(रा०च०मा० २।७५।३-८)

सुमित्रा माताके इस उपदेशमें सेवा-धर्मका सम्पूर्ण मर्म समाहित है। सेवक जब अपने सभी स्वार्थोंका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे अनन्यभावपूर्वक सेवाकार्य सम्पादित करता है तो वह सेवा धर्मका परमादर्श है। लक्ष्मणजीकी सेवा वस्तुतः परमोच्चकोटिकी उपासना है। सेवा-सावधान श्रीलक्ष्मणजी वनमें भगवान् श्रीरामके साथ चलने, बैठने, बोलने और जीनेकी अपनी जीवनचर्या अपनी माताके उपदेशानुसार संस्कारितकर दृढ़तापूर्वक संचालित करते हैं। श्रीभरतजी चरण-पादुकाकी सेवा करते हैं तो श्रीलक्ष्मणजी भगवान् श्रीरामकी चरणरजकी सेवाको ही जीवनका परम ध्येय मानते हैं-

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा।।

(रा०च०मा० ३।१४।७)

श्रीरामचरितमानसमें सेवा-धर्मका सम्पूर्ण विनियोग श्रीहनुमान्जीके चरित्रमें हुआ है। श्रीराम-लक्ष्मणको स्कन्धपर विराजितकर किष्किन्धा लाना, सीताशोधके क्रममें समुद्र-संतरण, रावण-मद-मर्दन, कुम्भकरण-गर्व-हनन, मेघनाद-यज्ञ-विध्वंसन, संजीवनी-आनयन, निकुम्भ, धूम्राक्ष, त्रिशिरा, अकम्पन, अतिकाय, अक्षादिका संहरण तथा श्रीराम-राज्याभिषेकके बाद अहर्निश पाद-सेवनकी प्रशंसा करते हुए भगवान् शिव पार्वतीसे कहते हैं-

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई।।

(रा०च०मा० ७।५०।८-९)

श्रीहनुमान्जीने माता जानकीके लिये एक ऐसे समघ्पत सेवककी भूमिका निभायी कि माँने उनकी अतुलनीय सेवासे प्रसन्न होकर आशीर्वादकी झड़ी लगा दी-

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।

(रा०च०मा० ५।१७।२-३)

माता सीतासे इतने आशीर्वाद किसी पात्रने नहीं पाये। लंकासे लौटनेके बाद हनुमान्जीके असाधारण वीरतापूर्ण कार्य एवं उनकी विनयशीलता तथा माता सीताके विरह-वर्णनकी मार्मिकतासे भगवान् श्रीराम अभिभूत होकर कहने लगे-

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।

(रा०च०मा० ५।३२।५-७)

सेवा-धर्मका ऐसा निष्काम निर्वहण और श्रीसीतारामजीके सम्मिलित आशीर्वादका सौभाग्य मानसमें सिर्फ हनुमान्जीको ही प्राप्त हुआ है। श्रीहनुमान्जी ऐसे विलक्षण सेवक हैं, जिन्होंने भगवान्के साथ-साथ भक्तकी सेवा की। उन्होंने यथावसर वानरों, सुग्रीवजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीभरतजीको भी संकटोंसे उबारा। यह उनके सेवा-धर्मकी पराकाष्ठा है।

मानसमें माता जानकीका सेवाधर्म सबको अभिभूत कर देता है। जनकपुरसे विदाईके समय सब रानियाँ श्रीसीताजीको आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं। सास, ससुर और गुरुकी सेवा करना। पतिका रुख देखकर उनकी आज्ञाका पालन करना-

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।।

(रा०च०मा० १।३३४।५)

श्रीसीताजीने इसका निर्वहण जीवनपर्यन्त किया। वनगमनके समय श्रीरामसे निवेदन करती हैं कि हे प्रियतम! मैं सभी प्रकारसे आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलनेसे होनेवाली सारी थकावटको दूर कर दूँगी-

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।

(रा०च०मा० २।६७।२)

अपनी साससे श्रीसीताजी कहती हैं कि आपकी सेवा करनेके समय दैवने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया-

सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा।।

(रा०च०मा० २।६९।४)

सचमुचमें जब चित्रकूटमें अवसर मिला तो उन्होंने सासकी भरपूर सेवा की। गोस्वामीजीने मानसमें लिखा है-

सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं।
तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं।।

(रा०च०मा० २।२५२।४)

राज्याभिषेकके पश्चात् अयोध्याजीमें श्रीसीताजी भगवान् श्रीरामकी सेवा अपने हाथोंसे करती हैं। सास और पतिकी सेवामें उन्हें थोड़ा भी अभिमान और मद नहीं है। गोस्वामीजी कहते हैं-

जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।।
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।।

(रा०च०मा० ७।२४।४-८)

सचमुच आज्ञापालन ही सर्वोच्च सेवा है, जहाँ सेव्य तन-मनसे सेवाके अधीन हो जाता है।

इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंमें सेवाधर्मका निरूपण किया गया है, जो अत्यन्त व्यावहारिक, प्रासंगिक और प्रेरक है।

भगवान् राम विनयशील समर्पित सेवकके प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करते अघाते नहीं और उसके अधीन हो जाते हैं। चित्रकूटमें गुरु वसिष्ठकी प्रशंसा करनेपर और श्रीभरतजीके आचरणको देखकर उन्हें 'निज सेवक' कहा और निष्कर्ष दिया-भरत जो कुछ कहें, वही करनेमें भलाई है-

भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी।।
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई।।

(रा०च०मा० २।२५९।२, ८)

इसी प्रकार अयोध्यासे अपने सखाको विदा करते समय भगवान् श्रीराम उनकी सेवाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई।।
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।
सब कें प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती।।

(रा०च०मा० ७।१६।४, ७-८)

भगवान् श्रीराम मानसमें स्पष्ट घोषणा करते हैं कि सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं, पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है-

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ।।
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

(रा०च०मा० ४।३।८, ४।३)

यहाँ स्पष्ट है कि भगवान का अनन्य सेवक वही है, जो सारे ब्रह्माण्डमें अपने प्रभुको छोड़कर किसी अन्यको नहीं देखता अर्थात् अखिल विश्व मेरे प्रभुका ही रूप है। अनन्य भक्त ऐसा समझकर सबकी सेवा करता है।

शास्त्रों और संतोंका मत है कि उपासनाके पाँच प्रकार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावोंमें दास्यभाव समस्त भावोंकी आधारशिला है। यह भी सत्य है कि भवसागरका संतरण क्रियासाध्य नहीं, कृपा-साध्य है। निष्कर्षतः आजके दुराचार और कदाचारसे संत्रस्त जीवनमें सेवाधर्मका संचार हो जाय तो मानव-जीवनमें सद्विचार और सदाचारकी सुवास भर जाय और जीव शरणागतवत्सल श्रीरामजीकी कृपासे उनकी शरण ग्रहणकर भवाम्बुधिसे पार पा जाय। गोस्वामी तुलसीदासजीने भवसागर-संतरणके एकमात्र उपायका वर्णन करते हुए मानसमें दृढ़तासे कहा-

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि।।

सेवा-धर्म

श्री राजेन्द्रदासजी महाराज

सेवा-धर्मको हस्तामलकवत् पिण्ड एवं ब्रह्माण्डके रहस्यको जाननेवाले समर्थ योगियोंके लिये भी अगम बताया गया है-'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' शरीर ग्रहण करनेकी सार्थकता भगवान की प्रसन्नतामें है और भगवान की प्रसन्नताका श्रेष्ठतम, सरलतम साधन सेवा ही है। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, उससे भगवान् गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं-'देवद्विजगुरूणां च शुश्रूषासु सदोद्यतः। तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण नरेश्वर।।' (विष्णुपु० ३।८।१६)

भागवतमें भी कहा है-'सर्वात्मा येन तुष्यति।' परब्रह्म परमात्माके जीव-जगत्के परम हितार्थ अवतरणके अनेक प्रयोजन हैं, उनमेंसे एक है-सेवा-धर्म। भगवान् सबके सेव्य होते हुए भी स्वयं माता-पिता, गऊ, ब्राह्मण, ऋषि-मुनि एवं समग्र प्रजाकी सेवाकर अपने चरित्रके माध्यमसे सेवा-धर्मकी शिक्षा समग्र सृष्टिको देते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी गोसेवा तो प्रसिद्ध ही है। वे अपनी शैशवलीलामें गोमय, गोमूत्र, गोपुच्छ एवं गोचरणरजके स्पर्शसे आह्लादित होते हैं। ललाटपर तिलक भी गोरोचनका धारण करते हैं, जैसा कि श्रीसूरदासजीने एक पदमें वर्णित किया है-

सोभित कर नवनीत लिएँ।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किएँ।।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिएँ।

वे बाललीलामें गव्य पदार्थोंका आहरणकर उनके प्रति अपने प्रेमको प्रकट करते हैं। पौगण्डलीलामें पहले वत्सचारण तत्पश्चात् गोचारणकर गोसेवाके परम आदर्शकी प्रतिष्ठा करते हैं। गोवंश-संरक्षणार्थ ही श्रीगोवर्धन-धारणकर, इन्द्रमानमर्दनकर, सुरभि-दुग्धधारासे अभिषिक्त होकर गोविन्द नाम प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि महत् पुरुषोंने इष्ट-देवता श्रीकृष्णकी भी इष्ट-देवता होनेसे गोमाताको अति-इष्ट कहा है।

महाभारतमें माता-पिता-गुरु आदिकी सेवाकी महिमाका अत्यन्त सारगर्भित वर्णन करते हुए पितामह भीष्मने महाराज युधिष्ठिरसे कहा है-

शुश्रूषते यः पितरं न चासूयेत् कदाचन।
मातरं भ्रातरं वापि गुरुमाचार्यमेव च।।
तस्य राजन् फलं विद्धि स्वर्लोके स्थानमर्चितम्।
न च पश्येत नरकं गुरुशुश्रूषयात्मवान्।।

(महा०, अनु० ७५।४०-४१)

राजन्! जो पिता-माता, बड़े भाई, गुरु और आचार्यकी सेवा करता है और कभी उनके गुणोंमें दोषदृष्टि नहीं करता है, उसको मिलनेवाले फलको जान लो। उसे स्वर्गलोकमें सर्वसम्मानित स्थान प्राप्त होता है। मनको वशमें रखनेवाला वह पुरुष गुरु-शुश्रूषाके प्रभावसे कभी नरकका दर्शन नहीं करता।

बस, आवश्यकता इस बातकी है कि व्यक्ति सैद्धान्तिक रूपसे इस सत्यको स्वीकार करे कि सेवा सदा सेव्यकी होती है और सेव्य कौन हो सकता है? इस प्रश्नकी मीमांसा करनेपर यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि जो ब्रह्मादि देवताओंका भी सेव्य है, वही हमारे लिये भी सेव्य है अर्थात् हम किसीकी भी (माता-पिता-गुरु, गऊ, ब्राह्मण आदि) सेवा भगवत्-भावसे ही करें। श्रीवृन्दावनके स्वामी श्रीहरिदासजीकी परम्पराके एक आचार्य श्रीभगवतरसिकदेवजीने सेवाको परिभाषित करते हुए अपनी वाणीमें कहा है-

रचिले शुचि सेवा करे सेवक कहिये सोय।
तन मन धन अर्पण करे रहे अपन को खोय।।
रहे अपन को खोय द्रवैं तब हरि-गुरु-देवा।
अनमाँग्यो सब मिलै जानि लेवैं शुचि भेवा।।
संचित-क्रिय-प्रारब्ध-कर्म सबैं जाय मुचि।
भगवतरसिक अनन्य क्रिया त्यागै अपनी रुचि।।

हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीगणेशदासजी भक्तमालीजीने एक बार मुझसे कहा था-मुझे आजतक जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, वह सेवासे ही प्राप्त हुआ है।

देवदुर्लभ मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर शीघ्र कल्याणका साधन भगवान की प्रसन्नता है तथा भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करनेका सहज सरल साधन है-सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखते हुए सेवा करना, इसीलिये सेवाकी महिमा अकथनीय है।

ब्रह्मलीन योगिराज श्री देवराहा बाबाजी के अमृत-वचन

❖ प्रेम ही सृष्टि है, सबके प्रति प्रेमभाव रखो।

❖ भूखोंको रोटी देनेमें और दुखियोंके आँसू पोछनेमें जितना पुण्य लाभ होता है, उतना वर्षोंके जप-तपसे भी नहीं होता।

❖ परमात्मासे पृथक् कुछ भी नहीं है। यह सर्वव्यापक ईश्वर प्रकृतिके कण-कणमें व्याप्त है। अतः चराचरको भगवत्स्वरूप मानकर सबकी सेवा करो।

❖ गीताका सार है, दुखीको सान्त्वना तथा कष्टमें सहायता देना एवं उन्हें दुःख-भयसे मुक्त करना

❖ आत्मचिन्तन, दैन्य-भाव और सद्गुरु-सेवा-इन तीनों बातोंको कभी मत भूलो।

❖ प्रतिदिन यथासाध्य कुछ न कुछ दान अवश्य करो, इससे त्यागकी प्रवृत्ति जागेगी।

❖ प्रेम एवं स्नेहसे दूसरोंकी सेवा करना ही सर्वोच्च धर्म है, उससे ऊँचा कुछ नहीं।

❖ सम्पूर्ण जप और तप दरिद्रनारायणकी सेवा और उनके प्रति करुणाके समान है।

❖ अठारह पुराणोंमें व्यासदेवके दो ही वचन हैं-परोपकार ही पुण्य है और दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना ही पाप है।

❖ अतिथि-सत्कार श्रद्धापूर्वक करो; अतिथिका गुरु एवं देवताकी तरह सम्मान करो।

❖ सनातन धर्मके प्रधान अंग गोसेवा, अतिथिसेवा और विष्णुसेवा है।

❖ गौएँ जहाँ भी रहती हैं, उस स्थानको शास्त्रोंने तीर्थ-सा पवित्र कहा है। वहाँ प्राणोंका त्याग करनेसे मनुष्य तत्काल मुक्त हो जाता है।

❖ जिस घरमें गरीबोंका आदर होता है और न्यायद्वारा अघ्जत सम्पत्ति है, वह घर वैकुण्ठके सदृश है।

❖ हिन्दुओंकी एकमात्र पहचान गोसेवा है।

❖ जो अपनी मधुरवाणी, सद्विचार, कुशल व्यवहार एवं सदाचारसे सभीको प्रसन्न रखता है, उसको भगवान् दूत बनाते हैं।

❖ जब चलो तो समझो कि मैं भगवान की परिक्रमा कर रहा हूँ, जब पियो तो समझो कि मैं भगवान का चरणामृत पान कर रहा हूँ। भोजन करो तो समझो कि मैं भगवान का प्रसाद पा रहा हूँ, सोने लगो तो समझो कि मैं भगवान्को दण्डवत् कर रहा हूँ और उन्हींकी गोदमें विश्राम कर रहा हूँ। दीनोंकी सेवा करो तो सोचो कि भगवान की सेवा कर रहा हूँ।

❖ देख बच्चा! भगवत्-साक्षात्कारके वास्ते अन्तरूकरणकी शुद्धि आवश्यक है, जो लोककल्याण करते ही सधेगी। शास्त्रमर्यादानुसार जीवन-यापन करते हुए दीन-दुखियोंके कष्टके निवारणका प्रयत्न करो। इसीसे कालान्तरमें भगवत्साक्षात्कार हो जायगा।

❖ मनुष्य तो अपने आपमें प्रेमका, दयाका, सेवाका और आनन्दका मूर्त रूप होता है।

❖ प्रत्येक कर्मको ईश्वरकी सेवा और परिणामको भगवत्प्रसाद समझना। सबके प्रति शिष्ट एवं समान भाव रखना, क्रोध-लोभका परित्याग करना ही प्रभुकी सेवा है।

❖ सभी मनुष्योंसे मित्रता करनेसे ईर्ष्याकी निवृत्ति हो जाती है। दुखी मनुष्योंपर दया करनेसे दूसरेका बुरा करनेकी इच्छा समाप्त हो जाती है। पुण्यात्माको देखकर प्रसन्नता होनेसे असूयाकी निवृत्ति हो जाती है। पापियोंकी उपेक्षा करनेसे अमर्ष, घृणा आदिके भाव समाप्त हो जाते हैं। यह साधकोंके लिये आचार है।

❖ भगवान की सेवा करो, दास्यभावसे उनपर विश्वास रखो, मित्रभावसे, सख्यभावसे उनसे प्रेम करो, गोपीभावसे उनके आनन्दके लिये या उनके लिये ही केवल सांसारिक कर्तव्य करो।

❖ मानव-जीवन श्रम, सदाचार और सेवासे इतना सुन्दर बनाओ कि सारा संसार तुम्हारे जीवनको देखकर प्रसन्न हो। परिवारमें जितने भी लोग हों, सभी प्रेमसे मिलकर रहना सीखो, फिर देखोगे कि कितना सुख मिलता है।

❖ गोमाता और संतोंका प्राणपणसे संरक्षण और सेवा करो।

❖ सम्पत्ति पाकर भी जिनमें उदारतापूर्वक दानकी या सेवाकी भावना नहीं आती, वे भाग्यहीन हैं।

❖ दुखी जनोंकी सहायता करो। पीड़ामें उन्हें आश्वासन दो। उनके प्रति सदा प्रेम, सेवा, सहानुभूति तथा उदारताका बर्ताव रखोगे तो सम्पूर्ण विश्व आत्मीय बन जायगा।

निरपेक्ष सेवा-धर्म

हम पैदा होते हैं, तब तीन संस्थाएँ साथ लेकर आते हैं। मनुष्य इन तीनों संस्थाओंका कार्य भलीभाँति चलाकर अपना संसार सुखमय बना सके, इस विषयमें गीता हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। वे तीन संस्थाएँ कौन-सी हैं? पहली संस्था है-हमारे आसपास लपेटा हुआ यह शरीर, दूसरी संस्था हमारे आसपास फैला हुआ यह विशाल ब्रह्माण्ड-यह अपार सृष्टि है, जिसके हम एक अंश हैं। वह समाज, जिसमें हमारा जन्म हुआ, हमारे जन्मकी प्रतीक्षा करनेवाले माता-पिता, भाई-बहन, अड़ोसी-पड़ोसी-यह हुई तीसरी संस्था।

ब्रह्मलीन संत श्रीविनोबा भावे

हम रोज इन तीनों संस्थाओंका उपयोग करते हैं-इन्हें छिजाते हैं। गीता चाहती है कि हमारे द्वारा इन संस्थाओंमें जो छीजन (कमी) आती है, उसकी पूर्तिके लिये हम सतत प्रयत्न करें और अपने जीवनको सफल बनायें। इन संस्थाओंके प्रति हमारे जो जन्मजात कर्तव्य हैं, उन्हें हम निरहंकार होकर करें।

इन कर्तव्योंको पूरा तो करना है, परंतु उनकी पूर्त्तकी योजना क्या हो? यज्ञ, दान और तप-इन तीनोंके योगसे वह योजना बनती है। यद्यपि इन शब्दोंसे हम परिचित हैं तथापि इनका अर्थ हम अच्छी तरह नहीं समझते। यदि हम इनका सही अर्थ समझ लें और इन्हें अपने जीवनका धर्म बनानेका प्रयत्न करें तो ये तीनों संस्थाएँ सफल हो जायँ और हमारा जीवन भी मुक्ति और प्रसन्नतासे आप्लावित हो जाय।

सबसे पहले हम यह देखें कि यज्ञका अर्थ क्या है? सृष्टि-संस्थासे हम प्रतिदिन काम लेते हैं। यदि सौ आदमी एक जगह रहते हैं तो दूसरे दिन वहाँकी सारी सृष्टि दूषित दिखायी देने लगती है। वहाँकी हवा हम दूषित कर देते हैं, जगह गन्दी कर देते हैं, अन्न खा जाते हैं और इस तरह सृष्टिको छिजाते हैं। हमें सृष्टि-संस्थाकी इस छीजनकी पूर्त्त करनी चाहिये। इसीलिये यज्ञका आविर्भाव हुआ।

सृष्टिकी जो हानि हो गयी है, उसे पूरा करना ही यज्ञ है। आज हजारों वर्षोंसे हम जमीनें जोतते आ रहे हैं, उससे जमीनका कस (उर्वरक-शक्ति) कम होता जा रहा है। यज्ञ कहता है-पृथ्वीको उसका कस वापस लौटा दो। जमीन जोतो, उसे सूर्यकी धूप खाने दो, उसमें खाद डालो; सृष्टिकी हानि पूरी करना-यह है यज्ञका एक हेतु। दूसरा हेतु है-उपयोगमें लायी हुई वस्तुओंका शुद्धीकरण। हम कुएँका उपयोग करते हैं, जिससे आसपास गन्दगी हो जाती है, पानी इकट्ठा हो जाता है। कुएँके पासकी यह सृष्टि जो अशुद्ध हो गयी है, उसे शुद्ध करना चाहिये। वहाँका गन्दा पानी निकाल डालना चाहिए, कीचड़ दूर कर देना चाहिये। क्षति-पूर्ति और सफाई करनेके साथ ही वहाँ कुछ प्रत्यक्ष निर्माण-कार्य भी करना चाहिये, यह तीसरी बात भी यज्ञके अन्तर्गत है। हम रोज कपड़े पहनते हैं तो हमें चाहिये कि रोज सूत कातकर उसकी कमी पूरी कर दें। कपास पैदा करना, अनाज उत्पन्न करना और सूत कातना भी यज्ञ-क्रिया ही है। यज्ञमें जो कुछ निर्माण किया जाता है, वह स्वार्थके लिये न होकर हमने जो क्षति की है, उसे पूरा करनेकी कर्तव्य-भावनासे होना चाहिये। यह परोपकार नहीं है। हम तो पहलेसे ही कर्जदार हैं। हम जन्मतरू ही अपने सिरपर ऋण लेकर आते हैं, इस ऋणको चुकानेके लिये हम जो कुछ निर्माण करें, वह यज्ञ अर्थात् सेवा है, परोपकार नहीं। उस सेवाके जरिये हमें अपना कर्ज चुकाना है। हम पद-पदपर सृष्टि-संस्थाका उपयोग करते हैं। अतः उस हानिकी

“सृष्टिकी जो हानि हो गयी है, उसे पूरा करना ही यज्ञ है। आज हजारों वर्षोंसे हम जमीनें जोतते आ रहे हैं, उससे जमीनका कस (उर्वरक-शक्ति) कम होता जा रहा है। यज्ञ कहता है-पृथ्वीको उसका कस वापस लौटा दो। जमीन जोतो, उसे सूर्यकी धूप खाने दो, उसमें खाद डालो; सृष्टिकी हानि पूरी करना-यह है यज्ञका एक हेतु। दूसरा हेतु है-उपयोगमें लायी हुई वस्तुओंका शुद्धीकरण। हम कुएँका उपयोग करते हैं, जिससे आसपास गन्दगी हो जाती है, पानी इकट्ठा हो जाता है। कुएँके पासकी यह सृष्टि जो अशुद्ध हो गयी है, उसे शुद्ध करना चाहिये। वहाँका गन्दा पानी निकाल डालना चाहिए, कीचड़ दूर कर देना चाहिये।”

पूर्ति, उसकी शुद्धि करनेके लिये एवं नवीन वस्तु उत्पन्न करनेके लिये हमें यज्ञ करनेकी जरूरत है। अन्य संस्था है-हमारा मनुष्य-समाज। माँ-बाप, गुरु, मित्र-ये सब हमारे लिये मेहनत करते हैं। इस समाजका ऋण चुकानेके लिये दानकी व्यवस्था की गयी है। दानका अर्थ है-समाजका ऋण चुकानेके लिये किया गया प्रयोग। दानका अर्थ परोपकार नहीं। समाजसे मैंने बहुत सेवा ली है, जब मैं इस संसारमें आया तो दुर्बल और असहाय था, इस समाजने मुझे छोटेसे बड़ा किया है; इसलिये समाजकी सेवा मेरा कर्तव्य है। परोपकार कहते हैं-दूसरेसे कुछ न लेकर की हुई सेवाको; परंतु यहाँ तो हम समाजमें पहले ही भरपूर ले चुके हैं। समाजके इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये जो सेवा की जाय, वही दान है। सृष्टिकी हानि-पूर्तिके लिये जो श्रम किया जाता है, वह यज्ञ है और समाजका ऋण चुकानेके लिये तन, मन, धन तथा अन्य साधनोंसे जो सहायता की जाती है, वह दान है।

इनके अलावा एक तीसरी संस्था और है, वह है-शरीर। शरीर भी दिन-प्रतिदिन छीजता (नष्ट होता) जाता है। हम अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय-सबसे काम लेते हैं, इनको छिजाते हैं। इस शरीर-संस्थामें जो विकार-जो दोष उत्पन्न हों, उनकी शुद्धिके लिये (मन, शरीर और इन्द्रियोंका संयमरूप) तप बताया गया है।

इस प्रकार सृष्टि, समाज और शरीर-इन तीनों संस्थाओंका कार्य जैसे अच्छी प्रकार चल सके, वैसा व्यवहार करना हमारा कर्तव्य है। हम अनेक योग्य-अयोग्य संस्थाओंका निर्माण करते हैं; परंतु ये तीन संस्थाएँ हमारी बनायी हुई नहीं हैं। ये तो स्वभावतः ही हमको मिल गयी हैं। ये संस्थाएँ कृत्रिम नहीं हैं। अतः इन तीनों संस्थाओंकी हानि यज्ञ, दान और तप-इन साधनोंसे पूरी करना हमारा स्वभाव-प्राप्त धर्म है। इस तरहसे चलनेपर जो कुछ शक्ति हमारे अन्दर है, वह सारी इस (धर्म-पालन)-में लग जायगी, अन्य बातोंके लिये और शक्ति बाकी ही नहीं बचेगी।

सृष्टि, समाज और शरीर-इन तीनों संस्थाओंको समुचित रखनेके लिये हमें अपनी सारी शक्ति खर्च करनी पड़ेगी। यदि कबीरकी तरह हम भी कह सकें-'हे प्रभो! तूने मुझे जैसी चादर दी थी, वैसी ही मैं लौटाकर जा रहा हूँ, तू इसे अच्छी तरह सँभालकर देख ले।' तो यह कितनी बड़ी सफलता है? परंतु ऐसी सफलता प्राप्त करनेके लिये व्यवहारमें हमें यज्ञ, दान और तप-यह त्रिविध कार्यक्रम पूरा करना चाहिये।

यज्ञ, दान और तपको हमने यहाँ अलग-अलग माना है; परंतु सच पूछा जाय तो इनमें भेद नहीं हैं; क्योंकि सृष्टि, समाज और शरीर-ये भिन्न-भिन्न संस्थाएँ हैं ही नहीं। यह समाज सृष्टिसे बाहर नहीं है, न यह शरीर ही सृष्टिसे बाहर है। इन तीनोंकी एक ही भव्य सृष्टि-संस्था बनती है। इसलिये हम जो उत्पादक श्रम करेंगे, जो दान देंगे, जो तप करेंगे, उस सबको व्यापक अर्थमें यज्ञ ही कहा जा सकता है। गीताने चैथे अध्यायमें द्रव्य-यज्ञ, तपोयज्ञ आदि बताकर यज्ञके अर्थको विशाल बना दिया है।

इन तीनों संस्थाओंके लिये हम जो-जो सेवा-कार्य करेंगे, वे यज्ञ-रूप ही होंगे। केवल जरूरत है, उस सेवाको निरपेक्ष रखनेकी। उसमें फलकी अपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती; क्योंकि फल तो हम पहले ही ले चुके हैं, कर्जा तो पहलेसे ही सिरपर चला आ रहा है। जो ले लिया है, उसे ही वापस करना है। यज्ञसे सृष्टि-संस्थामें साम्यावस्था प्रतिष्ठित होती है। दानसे समाजको साम्यावस्था प्राप्त होती है और तपसे शरीरमें साम्यावस्था रहती है। इस तरह तीनों ही संस्थाओंमें साम्यावस्था रखनेका यह कार्यक्रम है। इससे शुद्धि होगी। दूषित भाव नष्ट हो जायगा।

सेवा कैसे करें

श्रोता-सेवा करनेके लिये हमारे पास न तो धन है, न बल है, न बुद्धि है, न योग्यता है, न सामथ्य है; कोई भी सामग्री हमारे पास नहीं है, पर हम सेवा करना चाहते हैं तो कैसे करें? स्वामीजी-बहुत बढ़िया प्रश्न है। इसका उत्तर भी घटिया नहीं होगा, ध्यान देकर सुनना। सेवा करनेका अर्थ है-दूसरेका हित हो और प्रसन्नता हो। वर्तमानमें उसकी प्रसन्नता हो और परिणाममें उसका हित (कल्याण) हो, इसके सिवाय सेवा और क्या होती है?

ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी
श्रीरामसुखदासजी महाराज

जब हमारे पास शक्ति नहीं है, तो फिर हम दूसरेकी प्रसन्नता कैसे लें-इसके लिये मैं आपको अपनी दृष्टिमें बहुत बढिय़ा बात बताता हूँ। एक धनी आदमी है। उसे घाटा लग जाय, कोई भयंकर बीमारी हो जाय, बेटा मर जाय, ऐसी हालतमें आप उस दुःखमें सहमत हो जाओ कि 'आपका बेटा मर गया, यह बहुत बुरी बात हुई। आपको घाटा लग गया, यह बड़ा कष्टप्रद काम हुआ।' इस तरह हृदयसे उस दुःखमें सम्मिलित हो जाओ तो वह प्रसन्न हो जायगा, उसकी सेवा हो जायगी। ऐसे ही किसीके पास बहुत धन-सम्पत्ति हो जाय, लडक़ा बड़ा होशियार हो जाय तो उसे देखकर हृदयसे खुश हो जाओ और कहो कि वाह-वाह, बहुत अच्छा हुआ! इससे वह प्रसन्न हो जायगा।

> **किसी भी तरहसे किसीके द्वारा ही सेवा हो जाय तो हम प्रसन्न हो जायँ। जो सेवा करता है, उसे देखकर और जिनकी सेवा होती है, उन्हें देखकर हम प्रसन्न हो जायँ कि वाह-वाह, कितनी बढ़िया बात है। हमारे पास एक कौड़ी भी लगानेको नहीं हो, पर हम प्रसन्न हो जायँ, उस सेवामें सहमत हो जायँ तो हमारे द्वारा सेवा हो जायगी। बोलो, इसमें क्या कठिनता है? इसमें कोई सामग्री नहीं चाहिये, अपना हृदय चाहिये। सेवा वस्तुओंसे नहीं होती, हृदयसे होती है।**

सन्तोंके लक्षणोंमें आया है-'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर' (रा०च०मा० ७। ३८। १)। दूसरोंके दुरूखसे दुखी हो जायँ और दूसरोंके सुखसे सुखी हो जायँ-यह सेवा आप बिना रुपये-पैसेके, बिना बलके, बिना सामग्रीके कर सकते हैं। दूसरोंको दुखी देखकर आप दुखी हो जाओ कि 'हे नाथ! क्या करें? हमारे पास कोई सामग्री नहीं, धन नहीं, बल नहीं, जिससे हम दूसरेको सुखी कर सकें, हम क्या करें?' -इस तरह आप हृदयसे दुखी हो जाओ और दूसरोंको सुखी देखकर हृदयसे प्रसन्न हो जाओ तो यह आपकी बड़ी भारी सेवा होगी। जिसके हृदयमें ऐसा भाव होता है, उस पुरुषके दर्शनमात्रसे लोगोंको शान्ति मिलती है।

धन आदिसे हम दूसरोंकी सेवा करेंगे, उपकार करेंगे, यह बहुत ही स्थूल बुद्धि है। मैं तो कहता हूँ कि नीच बुद्धि है। आपने सेवाको महत्त्व नहीं दिया है। धनको महत्त्व दिया है। जो धनको महत्त्व देता है, वह नीच है। जो आपके हाथका मैल है, उसे आप अपनेसे भी बढक़र महत्त्व देते हो और लोगोंकी सेवाके लिये भी उसकी आवश्यकता समझते हो-यह बहुत ही खोटी (खराब) बुद्धि है। धन आदिसे सेवा करनेपर अभिमान होता है, तिरस्कार होता है। जिसकी सेवा करोगे, उसपर भी रोब जमाओगे कि हमने इतना तुम्हें दिया है, इतनी तुम्हारी सहायता की है। वह यदि आपके विरुद्ध हो जायगा तो निन्दा करोगे कि देखो, हमने इसकी इतनी सहायता की और यह हमारा विरोध करता है। इस प्रकार संघर्ष पैदा होगा। आप अपनी विद्वत्तासे सेवा करोगे और कहीं दूसरा भी ऐसा करेगा तो ईर्ष्या पैदा होगी। हम बढिय़ा व्याख्यान देते हैं और दूसरोंका व्याख्यान हमारेसे भी बढिय़ा हो गया तो ईर्ष्या होगी। कहते हो कि जनताकी सेवा करते हैं, पर वास्तवमें सेवा नहीं करते हो, लड़ाई करते हो। ऐसे आदमी बहुत कम मिलेंगे, जो वास्तवमें सेवा करते हैं। हम राम-नामका माहात्म्य बताते हैं, लोगोंको नाम-जपमें लगाते हैं, पर दूसरा कोई लोगोंको नाम-जपमें लगाता है तो वह इतना नहीं सुहाता। हमारे कहनेसे कोई नाम-जपमें लग जाय तो हम राजी होते हैं, पर दूसरेके कहनेसे कोई नाम-जपमें लग जाय तो हम उतने राजी नहीं होते, जबकि हमें उससे भी ज्यादा राजी होना चाहिये कि हमारा परिश्रम तो हुआ नहीं और काम हमारा हो गया। कोई व्यक्ति हमारे मतको नहीं

मानता, हमारे सिद्धान्तको नहीं मानता, प्रत्युत हमारे सिद्धान्तका खण्डन करता है, हमारी मान्यताका, हमारी साधन-पद्धतिका खण्डन करता है, पर राम-नामका प्रचार करता है, लोगोंसे नाम-जप करनेके लिये कहता है, तो उससे हमारे भीतर क्या बुद्धि पैदा होती है? हमें नामका प्रचार तो अच्छा लग जायगा, पर उसके कहनेसे लोग नाम-जप करते हैं-यह अच्छा नहीं लगेगा; क्योंकि वह हमारे सिद्धान्तका, हमारे मतका, हमारी साधन-प्रणालीका खण्डन करता है। इस प्रकार हम खण्डनको जितना महत्त्व देते हैं, उतना नामके प्रचारको नहीं देते। हम नामके प्रेमी नहीं हैं, हम अपने मतके, अपने गुरुके प्रेमी हैं। हमारे गुरुजीको मानो, तब तो ठीक है, पर हमारे गुरुजीको नहीं मानो और राम-राम करो तो कुछ नहीं होगा-यह मतवालेकी बात है। अगर वास्तवमें हमें नामकी महिमा अभीष्ट है तो कोई नास्तिक-से-नास्तिक, नीच-से-नीच व्यक्ति भी नामकी महिमा कहे तो मन-ही-मन आनन्द आना चाहिये, हृदयमें उल्लास होना चाहिये कि वाह-वाह, इसने बहुत बढिय़ा बात कही। इसका नाम है-सेवा।

दूसरेका सदाव्रत बहुत अच्छा चलता है, वह बढिय़ा भोजन देता है और सबका आदर करता है। लोगोंमें उसकी महिमा होती है। हम भी सदाव्रत खोलते हैं, पर हमारी महिमा नहीं होती है तो हमारे भीतर ईर्ष्या होती है कि नहीं? अगर ईर्ष्या होती है तो हमारे द्वारा बढिय़ा सेवा नहीं हुई। वास्तवमें तो हमें खुशी आनी चाहिये कि वहाँ बढिय़ा भोजन मिलता है, हमारे यहाँ तो साधारण भोजन मिलता है। हम उपकारका जो काम करते हैं, वही काम दूसरा आरम्भ कर दे तो उससे हमारेमें ईर्ष्या पैदा होती है, द्वेष पैदा होता है तो यह हम सेवा नहीं कर रहे हैं, सेवाका वहम है। किसी भी तरहसे किसीके द्वारा ही सेवा हो जाय तो हम प्रसन्न हो जायँ। जो सेवा करता है, उसे देखकर और जिनकी सेवा होती है, उन्हें देखकर हम प्रसन्न हो जायँ कि वाह-वाह, कितनी बढिय़ा बात है। हमारे पास एक कौड़ी भी लगानेको नहीं हो, पर हम प्रसन्न हो जायँ, उस सेवामें सहमत हो जायँ तो हमारे द्वारा सेवा हो जायगी। बोलो, इसमें क्या कठिनता है? इसमें कोई सामग्री नहीं चाहिये, अपना हृदय चाहिये। सेवा वस्तुओंसे नहीं होती, हृदयसे होती है।

लोगोंमें यह वहम रहता है कि इतना धन हो जाय तो हम ऐसी-ऐसी सेवा करेंगे। विचार करना चाहिये कि जिनके पास उतना धन है, वे सेवा करते हैं क्या? वे तो सेवा नहीं करते, और हम करेंगे। जब धन हो जाय, तब देखना! नहीं होगी सेवा। जिस समय पैसा हो जायगा, उस समय यह भाव नहीं रहेगा। भाव बदल जायगा। हमने देखे हैं ऐसे आदमी। केवल पुस्तकोंकी बात नहीं कहता हूँ। कलकत्तेके एक सज्जन दलाली करते थे और स्वर्गाश्रम, ऋषिकेशमें सत्संगके लिये आया करते थे। बड़ा उत्तम स्वभाव था उनका। वे कहते थे कि हम तो दलाली करते हैं, वह भी छोडक़र सत्संगमें आ जाते हैं और इनके पास इतना-इतना धन है, पर ये सत्संगमें नहीं आते। इन्हें क्या बाधा लगती है? परंतु आगे चलकर जब उनके पास धन हो गया, तब उनका सत्संगमें आना कम हो गया। उन्हें सत्संगमें आनेका समय ही नहीं मिलता। कारण कि धन बढ़ेगा तो कारोबार भी बढ़ेगा और कारोबार बढ़ेगा तो समय कम मिलेगा। अतः जबतक धन नहीं है, तबतक और विचार रहता है, पर धन होनेपर वह विचार नहीं रहता। किसी-किसीका वह विचार रह भी जाता है, पर वे शूरवीर ही हैं, जिन्होंने धनको पचा लिया। प्रायरू धन पचता नहीं, अजीर्ण हो जाता है। बलका अजीर्ण हो जाता है। पहले विचार रहता है कि बल हो तो हम ऐसा-ऐसा करें, पर बल होनेपर निर्बलको दबाते हैं। जब वोट माँगते हैं, उस समय कहते हैं कि हम आपकी सेवाके लिये ये-ये काम करेंगे, पर मिनिस्टर बननेपर आपको पूछेंगे भी नहीं। क्या यह सेवा है? यह सेवा नहीं है, स्वार्थ है। एक गाँवमें एक आदमी गया तो उसने कहा कि तुम्हारे गाँवमें इतना कूड़ा-कचरा पड़ा है, क्या सफाई करनेके लिये मेहतर नहीं आता? वे बोले-पाँच वर्षके बाद आता है मेहतर। पहले कोई नहीं आता। जब लोग वोट माँगने आते हैं, तब मेहतर आता है।

दूसरा कोई सेवा करता है तो हमारेको बुरा क्यों लगता है? इसलिये कि हमारी महिमा नहीं हुई, उसकी महिमा हो गयी। उसने अन्नक्षेत्र खोल दिया, विद्यालय खोल दिया, व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया तो उसकी महिमा हो गयी, हमारी महिमा नहीं हुई। यह सेवा करना है या अपनी महिमा चाहना है? कसौटी कसकर देखो तो पता लगे। सेवाका तो बहाना है। अच्छाईके चोलेमें बुराई रहती है-'कालनेमि जिमि रावन राहू।' ऊपर अच्छाईका चोला है, भीतर बुराई भरी है। यह बुराई भयंकर होती है। जो बुराई चैड़े (प्रत्यक्ष) होती है, वह इतनी भयंकर नहीं होती, जितनी यह भयंकर होती है।

असली सेवा करनेका जिसका भाव होगा, वह दूसरेके दुःखसे दुखी और दूसरेके सुखसे सुखी हो जायगा। दूसरोंके दुरूखसे दुखी और सुख से सुखी न होकर कोई सेवा कर सकता है क्या? जबतक दूसरोंके दुःखसे दुखी और सुखसे सुखी नहीं होगा, तबतक सेवा नहीं होगी। जो दूसरोंके दुःखसे दुखी होगा, वह अपना सुख दूसरोंको देगा, स्वयं सुख नहीं लेगा; और जो दूसरोंके सुखसे सुखी होगा, उसे अपने सुखके लिये संग्रह नहीं करना पड़ेगा। यह बात कण्ठस्थ कर लो कि दूसरोंके दुःखसे दुखी होनेवालेको अपने दुःखसे दुखी नहीं होना पड़ता और दूसरोंके सुखसे सुखी होनेवालेको अपने सुखके लिये भोग और संग्रह नहीं करना पड़ता।

संसारसे मिली हुई सामग्रीको अपनी मानकर सेवामें लगाओगे तो अभिमान आयेगा। अतः सेवाके लिये सामग्रीकी नहीं, हृदयकी आवश्यकता है।

वशीकरण का मन्त्र, आशीर्वाद का तन्त्र तथा सफलता का यन्त्र है सेवा

'सेवा' शब्द देखने, पढने, सुनने एवं बोलनेमें अति लघु-छोटा है, परंतु इसके अर्थ, भाव एवं परिणाम अतिशय गहन, विशाल, महान् एवं रहस्यमय हैं। सेवा शब्द मिठास एवं रससे परिपूर्ण है। सेवा वशीकरणका मन्त्र है, आशीर्वादका तन्त्र है तथा सफलताका यन्त्र है।

गीतामनीषी स्वामी श्री
वेदान्तानन्दजी महाराज

एकबार एक देवदूत दो प्रकारकी सूचियाँ लेकर उस भजनानन्दी भक्तके घर प्रकट हुआ। उसने देवदूतका अभिनन्दन एवं अभिवादनकर पूछा- 'आपके करकमलोंमें ये सूचियाँ कैसी हैं?' देवदूतने प्रथम सूची दिखाकर कहा- 'इस सूचीमें उन महानुभावोंके शुभ नाम अंकित हैं, जो सर्वेश्वरसे प्रेम करते हैं।' तब उस भक्तने बड़ी उत्सुकतापूर्वक पूछा- 'देवदूत! क्या मेरा नाम भी इस सूचीमें है?' देवदूतने कहा- 'सबसे ऊपर आपका ही शुभ नाम अंकित है।' उस भक्तने पुनः पूछा- 'यह दूसरी सूची कैसी है?' देवदूतने कहा- 'भक्तप्रवर! इस सूचीमें उन भक्तोंके नाम हैं, जिन्हें भगवान्श्री अतिशय प्यार करते हैं।'

सेवाका अभिप्राय- १. सेव्यमें लीन अर्थात् एकरूप-एकरस हो जाना। २. स्वयं कष्ट उठाकर समस्त प्राणियोंको सुख पहुँचाना। ३. स्वार्थरहित, कामनारहित एवं अहंकाररहित होना। ४. कर्तव्यबुद्धिसे कर्मोंका सम्पादन, कर्मोंको अकर्म बनाना। ५. दयाके भावोंको क्रियान्वित करने-व्यावहारिक रूप प्रदान करनेकी दिव्य कला।

साधक यहाँ विशेष ध्यान दें कि सेवाका तात्पर्य निष्काम सेवासे है।

निष्काम सेवाका अद्भुत लाभ- १. अहंकारका नाश एवं विनम्रताका विकास। २. मनकी निर्मलता एवं एकाग्रता। ३. खुली आँखोंसे समाधिके आनन्दकी दिव्यानुभूति। ४. मन स्व (आत्मा-परमात्मा)-में स्थित अर्थात् ईश्वर-दर्शन। ५. पुनर्जन्मकी समाप्ति एवं मोक्षपदकी प्राप्ति।

निष्काम सेवीके लक्षण-वह अध्यात्मवादी, समतावादी, आशावादी, परम उत्साही, धैर्यवान् 'धृत्युत्साह-समन्वितः' (गीता १८। २६), सदाचारी, सर्वहितकारी, निःस्वार्थी, निरभिमानी एवं भगवद्भक्त होता है।

सावधान साधक! सेवामें अभिमान एवं स्वार्थ सेवकके सारे पुरुषार्थको मिट्टीमें मिला देते हैं।

जब सेवाभावका वास्तविक स्वरूप जाना जाता है, किंवा जीवन सेवामय हो जाता है तो दिव्यानन्द, अखण्ड आनन्दकी अनुभूति हृदय-मन्दिरमें स्वतः होने लगती है। हमारी

भारतीय सनातन-पुरातन संस्कृति अद्भुत है, जिसमें मानवके परम-लक्ष्य (ईश्वरदर्शन-आत्मसाक्षात्कार)-को परिलक्षित करनेहेतु अनेकानेक साधनोंपर प्रकाश डाला गया है। यथा-जप, तप, व्रत, पूजा, पाठ, संयम, नियम, सत्संग तथा सुमिरन इत्यादि। निःसन्देह इन सब साधनोंका सम्पादन अनिवार्य रूपसे करना चाहिये, जिससे अन्तःकरणमें एक विशेष प्रकारकी सात्त्विकता, स्थिरता, प्रसन्नता एवं सद्भावनाका उदय होता है। ईश्वर-प्राप्तिके इन साधनोंमें सेवाभाव सरल, सहज, सरस तथा श्रेष्ठ साधन है। कारण, सेवाके अतिरिक्त जितने भी आध्यात्मिक साधन हैं, उनमें साधकको स्वकल्याणकी भावना निहित रहती है, किंतु सेवामें स्वयंका उद्धार होता है, परमशान्ति और आत्मतृप्तिकी अनुभूति होती है, इसके साथ-ही-साथ समस्त भूत-प्राणियोंका हित, उत्थान, विकास एवं उद्धार भी होता है। वह तरनतारन बन स्वयं तो तरता है, सबका तारक भी बन जाता है-

'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति।'

परहितके समान कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं-कर्तव्य नहीं-'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।' अतः प्रत्येक कल्याणकामी साधकको ऐसे क्रान्तिकारी संसाधनको व्यावहारिक रूप देना चाहिये। ऐसा सेवक-उपासक परमेश्वरकी विशेष अनुकम्पा और प्रेमका अधिकारी बन जाता है। परहितरत सेवकसे भगवान् अतिशय प्रेम करते हैं।

सिद्धान्तको प्रकट करनेवाला एक दिव्य दृष्टान्त-किसी नगरमें एक भगवद्भक्त थे, जो सदैव भगवच्चिन्तनमें लीन रहते थे। संयमित एवं मर्यादित जीवन था उनका। एकबार एक देवदूत दो प्रकारकी सूचियाँ लेकर उस भजनानन्दी भक्तके घर प्रकट हुआ। उसने देवदूतका अभिनन्दन एवं अभिवादनकर पूछा-'आपके करकमलोंमें ये सूचियाँ कैसी हैं?' देवदूतने प्रथम सूची दिखाकर कहा-'इस सूचीमें उन महानुभावोंके शुभ नाम अंकित हैं, जो सर्वेश्वरसे प्रेम करते हैं।' तब उस भक्तने बड़ी उत्सुकतापूर्वक पूछा-'देवदूत! क्या मेरा नाम भी इस सूचीमें है?' देवदूतने कहा-'सबसे ऊपर आपका ही शुभ नाम अंकित है।' उस भक्तने पुनः पूछा-'यह दूसरी सूची कैसी है?' देवदूतने कहा-'भक्तप्रवर! इस सूचीमें उन भक्तोंके नाम हैं, जिन्हें भगवान्श्री अतिशय प्यार करते हैं।'

उस भक्तने पूछा-'इस सूचीमें भी मेरा नाम अंकित है क्या?' देवदूत बोले-'है तो सही, परंतु इसमें आप प्रथम स्थानपर नहीं, दूसरे स्थानपर हैं। प्रथम स्थान तो आपके अमुक पड़ोसीका है।' उस भक्तने आश्चर्यचकित होकर कहा-'देवदूतजी! उस व्यक्तिको तो कभी बैठकर आरती-पूजा-पाठ करते नहीं देखा। वह कभी ईश्वरके नामका जप-भजन तथा सुमिरन भी नहीं करता। वह तो केवल दीन-दुखियोंकी, कुष्ठरोगियोंकी, बीमारोंकी अथवा अनाथोंकी सेवा करता रहता है। प्यासोंको पानी, भूखोंको रोटी, धनहीनोंको धन, जरूरतमन्द कन्याओंकी शादी, निर्धन बच्चोंको पढ़ानेमें ही लगा रहता है।' देवदूतने कहा-'यही कारण है कि भगवान् उससे सबसे अधिक प्यार करते हैं। नर-सेवा ही नारायण-सेवा है। दीनोंकी सेवा ही दीनानाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथकी सेवा है। जनसेवा ही जनार्दनकी सेवा एवं पूजा है; क्योंकि सर्वेश्वरसे भिन्न कुछ भी नहीं है।' गीता-उपदेष्टा इस तथ्य एवं सत्यको बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकट करते हैं-

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७।७)

अर्थात् हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।

ऐसे परसेवारत भक्तोंके लिये ही तो भगवान् कहते हैं-'मैं भक्तोंका दास भक्त मेरे मुकुटमणि।' ऐसे परहितकारिताकी पावन गंगामें डूबे भक्तोंकी आन्तरिक दिव्य भावनाको पुनः-पुनः नमन करते हैं-

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

मेरे प्राणप्रिय! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सुनो। मुझे राज्य-वैभव नहीं चाहिये। स्वर्ग-सुखकी भी चाहना नहीं, मुक्तिका आनन्द भी नहीं चाहिये। मात्र एक प्रबल इच्छा है कि दुःखोंकी भडक़ती आगमें जलते हुए, तपते हुए प्राणियोंके सब कष्ट दूर हो जायँ।

श्रीमद्भागवतमहापुराणमें भी राजा रंतिदेव दुःखोंकी आगमें झुलसते हुए प्राणियोंको देखकर दयायुक्त अमृतमय वचन कहते हैं-

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजा मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

(श्रीमद्भा० ९।२१।१२)

भगवन्! मैं आपसे आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति नहीं चाहता और तो क्या, मैं मोक्षकी कामना भी नहीं करता। मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे किसी भी प्राणीको दुःखन हो।

यह अद्भुत परहितकारिताकी मिसाल है, जो अति सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य घोषणा करते हैं कि समस्त प्राणियोंकी मनसा-वाचा-कर्मणा सेवा तथा हित करनेवाले मुझको प्राप्त होते हैं-

'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।'

(गीता १२। ४)

'सर्वभूतहिते रताः' की मशाल जलानेवाले प्रभुके भक्तको चाहिये कि वह समदर्शी, समबुद्धि, समतामें स्थित तथा समस्त इन्द्रियोंको संयमित रखे। अन्यथा इस सेवा-सूत्रको अपनाना प्रदर्शनमात्र ही बन जायगा। भगवान्श्री यहाँ सब परहितकारी भक्तोंको सचेत करते हैं-

'सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।'

(गीता १२। ४)

अर्थात् सभी इन्द्रियाँ वशमें करते हुए योगी सभीमें समबुद्धि रखे।

आज प्रत्येक व्यक्ति शान्ति तो चाहता है, परंतु दूसरोंको दुःख देकर, यह कदाचित् सम्भव नहीं। दुःखदोगे तो दुःख मिलेगा, सुख दोगे तो सुख निश्चितरूपसे मिलेगा। प्रसिद्ध भी है-जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

यदि एक हाथ दूसरे हाथको चन्दन लगाता है तो जिस हाथपर चन्दन लगा है, वह तो शीतल होगा। साथ-ही-साथ जिस हाथने चन्दन लगाया है, वह भी ठण्डा होगा।

एतदर्थ सेवाके दिव्य गुणको साकार करनेके लिये मानवको चाहिये कि वह सहयोगी, उपयोगी एवं उद्योगी बन जीवन व्यतीत करे।

भजनका व्यापक रूप है-अपनी ओरसे कभी भी किसीको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाना। सबकी सेवामें युक्त होकर सुख पहुँचानेकी निष्काम भावपूर्ण चेष्टा ही व्यापक भजन कहलाता है। हम मालाजप भी करें-भजन भी करें, परंतु संसारमें, व्यवहारमें तथा व्यापारमें दूसरोंको दुःख पहुँचायें, धोखा-धड़ी करें, बेईमानी करें, राग-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा तथा परनिन्दा, परदोषदर्शनमें अमूल्य समय गवायें तो भजन मात्र पाखण्ड बनकर रह जायगा। सारांशमें सबका दुःख बँटा एवं मिटाकर सुख पहुँचानेकी भरपूर चेष्टा करनेसे मानव सदैव शान्त-प्रशान्त रहता है। वह शीघ्र ही ईश्वरदर्शनोंका सुयोग्य अधिकारी बन जाता है।

निष्काम सेवाका आदर्श स्थापित करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके राजसूययज्ञमें स्वयं जूठी पत्तलें उठायीं और आगन्तुकोंका पाद-प्रक्षालन किया। गुरु-आश्रममें झाड़ूतक लगायी। सेवाके प्रसंगमें एक और रहस्यमय तथ्य प्रकट करना अनिवार्य है कि सेवा छोटी-बड़ी नहीं होती है। जिस सेवाकार्यमें आसक्ति नहीं, अभिमान नहीं, कोई अपना स्वार्थ नहीं, वह छोटी सेवा भी महान् सेवा बन जाती है।

गीताकार भगवान् श्रीकृष्ण सेवाकी दिव्य प्रेरणा देते हैं-

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।'

(गीता ४। ३४)

पुनश्च-'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं'

(गीता १७। १४)

'आचार्योपासनं'

(गीता १३। ७)।

गुरु, आचार्य और प्राज्ञजनोंका पूजन करो! सेवा करो! आज्ञापालन करो! इस प्रकार आत्मज्ञान-ब्रह्मज्ञान एवं तत्त्वज्ञान शिष्यके अन्तःकरणमें स्वतः संचारित हो जाता है।

आदिगुरुशंकराचार्यजीके एक पट्ट शिष्य थे-त्रोटकाचार्य! वे मन्दबुद्धि, पढने-लिखनेमें कमजोर, परंतु गुरुकी आज्ञा एवं सेवामें सदैव तत्पर रहते थे। एक दिन सभी शिष्य कक्षामें उपस्थित हो गये, पर त्रोटक नहीं आये। गुरुजीने पूछा-'त्रोटक कहाँ है? पढ़ाई शुरू की जाय।' सब शिष्योंने एक स्वरसे कहा-'वह तो पढना-लिखना जानता नहीं। कृपया उसकी प्रतीक्षाकर समय नष्ट न करें तो अच्छा है।' परंतु गुरुजी जानते थे कि त्रोटक दिन-रात मेरी निष्काम भावसे सेवा करता है। चर्चा चल ही रही थी-त्रोटक कक्षामें आ गये। पसीनेसे लथपथ थे। आते ही गुरुचरणोंमें नमन किया। गुरुजीने विलम्बसे आनेका कारण पूछा? विनम्रभावसे उत्तर देते हुए कहा-'गुरुवर! आपके वस्त्र धो रहा था। विलम्ब हो गया, क्षमा चाहता हूँ', परंतु गुरुजीने कहा-'बेटे! आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं। मैं विद्यार्थियोंको पढ़ा नहीं पाऊँगा, आज तुम इन्हें पढ़ा दो।' त्रोटक घबरा गये। कुछ देर बाद बोले-गुरुजी! मैं तो इन सभी विद्यार्थियोंसे मन्दबुद्धि हूँ। ये सब बड़े विद्वान् हैं, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, मैं इन्हें कैसे पढ़ा सकूँगा। मुझे खुद लिखना-पढना नहीं आता।' इस बातपर सभी विद्यार्थी व्यंग्यात्मक हँसी हँसने लगे, परंतु गुरुदेवने त्रोटकको अपने आसनपर बैठा दिया। गुरुदेवकी आज्ञा सर्वोपरि होती है। गुरुकृपा तथा निष्काम सेवाके प्रभावसे उसने ऐसा अद्भुत प्रवचन किया कि सभी सहपाठी सुनकर दंग रह गये। बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतना ज्ञान त्रोटकको कहाँसे मिला! आज भी त्रोटकाचार्यका नाम आदिगुरुशंकराचार्यके शिष्योंमें बड़े गर्वसे लिया जाता है।

अतः निष्कामभावसे की गयी सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। निष्कामसेवी सदा सर्वदा सर्वत्र पूजा जाता है। भगवान् भी ऐसे सेवाभावीके ऋणी एवं आभारी हो जाते हैं।

वेदों में सेवा के उपदेश

स्वामी श्री
विवेकानन्दजी सरस्वती

"समाजमें हम अपनी स्थूल दृष्टिसे देखते हैं कि कुछ असामान्य लोग बिना कारण ही दूसरोंकी सेवामें संलग्न हैं। हम अपनी दृष्टिसे देखनेपर इतना ही समझ पाते हैं कि जिस प्रकार माता-पिता अपनी संतानके कष्टको नहीं देख सकते, वे आन्तरिक प्रेरणासे उसके कष्टके निवारणके लिये प्रवृत्त हो ही जाते हैं, जिस प्रकार जननी अपने शिशुके कष्टनिवारणार्थ स्वतः प्रवृत्त होती है और उसके बिना वह मौन बैठी नहीं रह सकती, उसी प्रकार जिन महापुरुषोंने हमारी दृष्टिसे अन्योंके कष्टनिवारणार्थ अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया है, वह उनकी मातृवत् आन्तरिक प्रवृत्ति ही है। इसके बिना वे सुखसे नहीं बैठ सकते।"

किसी भी शिक्षा, उपदेश, ज्ञानके संचारके लिये उपपत्ति एवं दृष्टान्तकी अत्यधिक आवश्यकता होती हैय क्योंकि इसके द्वारा विज्ञेय वस्तु सुगमतासे बुद्धिगम्य एवं बुद्धिग्राह्य हो जाती है, जिससे ज्ञानी एवं जिज्ञासु दोनों ही सफलमनोरथ होकर अपने-आपको कृतकृत्य मानते हैं। लोकमें हम लौकिक ऐतिह्यके माध्यमसे इसकी पूर्ति करते हैं, किंतु अनादिनिधना भगवती श्रुति इस कार्यको सृष्टिमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होनेवाले पदार्थों, क्रियाओं एवं विषयोंको माध्यम बनाकर उपदेश देती हैं। उपदेशकी यह विधा शाश्वत एवं आकर्षक है। इस विधासे परमात्माकी सृष्टिको समझनेकी प्रेरणा जहाँ हमें प्राप्त होती है, वहीं उसके अकृत्रिमत्वका भी बोध कराती है।

वेदमें कल्याणमार्गपर चलनेके लिये जहाँ उपदेश दिया गया है, वहाँ सूर्य, चन्द्रसे उपमा दी गयी है-

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥

(ऋग्वेद ५।५१।१५)

यहाँ परस्परमें संघर्ष न करते हुए और एक-दूसरेको जानते-पहचानते हुए चलनेका व्यवहार करनेका उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार हम जीवनमें कैसे सेवाभावी बनें? इसके लिये अथर्ववेदका एक मन्त्र देखिये-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

(अथर्ववेद ३। ३०। १)

इस मन्त्रमें गौ तथा सद्यःप्रसूत बछड़ेका उदाहरण देकर वेदने कहा है कि तुम भी इसी प्रकारसे व्यवहार करो। गौका बछड़ेके प्रति प्रेम निसर्गप्रदत्त है, वह स्वार्थप्रसूत नहीं है। इसी प्रकार हमारा प्रेम भी निःस्वार्थ हो। सेवा और प्रेमका आपसमें वैसा ही निकटका सम्बन्ध है, जिस प्रकार वात्सल्य एवं सेवाका। प्रेम और वात्सल्यके बिना जो सेवा की जायगी, वह बाह्यरूपमें तो सेवा दृष्टिगोचर होगी, किंतु यथार्थमें वह सेवा नहीं होगी। सेवाके लिये वेदमें परमात्मासे इस प्रकार प्रार्थना की गयी है-

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।

(ऋग्वेद १। १। ९)

इस मन्त्रमें प्रार्थना की गयी है कि हे प्रभो! आप हमारे लिये वैसे प्राप्य हों, जैसे पिता पुत्रके लिये होता है।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।।

(ऋग्वेद ७। ३२। २६)

इसी बातको एक-दूसरे स्थलपर वेदमें कहकर अभिव्यक्त किया गया है कि जैसे पिता अपने पुत्रके लिये उपकारक होता है, उस प्रकारसे आप हमारे लिये सर्वसाधक हों। 'सेवा' सृष्टि-संचालनका वह तत्त्व है, जिसके माध्यमसे ही परमात्माकी सृष्टि सुव्यवस्थित रूपसे संचालित हो रही है। छोटोंका अपनेसे बड़ोंके प्रति जो उपकारी भाव होता है, उसकी जननी श्रद्धा है और बड़ोंका छोटोंके प्रति जो उपकारी भाव होता है, उसका जनक वात्सल्य भाव है। बिना वात्सल्यके कोई प्राणी अपने बच्चोंका लालन-पालन नहीं कर सकता। वात्सल्य और श्रद्धा जब अपनी परिमित सीमाका अतिक्रमणकर विश्वके प्रत्येक प्राणीके उपकारके लिये अभिव्यक्त होते हैं तो ये वात्सल्य और श्रद्धा ही लोकमें 'सेवा' शब्दद्वारा कहे जाते हैं। परमात्मासे हमारा कैसा प्रेम हो या हम परमात्माके किसी प्रकार प्रेमपात्र बनें, इसके लिये भी वेदमें एक मन्त्र कहा गया है, जो इस प्रकार है-

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये।।

(ऋग्वेद १। ९१। १३)

अर्थात् हे सर्वपालक, सुखदायक प्रभो! तुम मेरे हृदयमें इस प्रकार विराजमान होओ, जिस प्रकार गौ यवके प्रति अर्थात् जौके खेतमें तथा मनुष्य अपने गृहमें। एक दूसरी प्रार्थनामें वेदमें परमात्माको माता-पिता कहकर सम्बोधित किया गया है-

त्वं हि नरू पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अथा ते सुम्नमीमहे।।

(सामवेद उ० ४। २। १३। २)

समाजमें हम अपनी स्थूल दृष्टिसे देखते हैं कि कुछ असामान्य लोग बिना कारण ही दूसरोंकी सेवामें संलग्न हैं। हम अपनी दृष्टिसे देखनेपर इतना ही समझ पाते हैं कि जिस प्रकार माता-पिता अपनी संतानके कष्टको नहीं देख सकते, वे आन्तरिक प्रेरणासे उसके कष्टके निवारणके लिये प्रवृत्त हो ही जाते हैं, जिस प्रकार जननी अपने शिशुके कष्टनिवारणार्थ स्वतः प्रवृत्त होती है और उसके बिना वह मौन बैठी नहीं रह सकती, उसी प्रकार जिन महापुरुषोंने हमारी दृष्टिसे अन्योंके कष्टनिवारणार्थ अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया है, वह उनकी मातृवत् आन्तरिक प्रवृत्ति ही है। इसके बिना वे सुखसे नहीं बैठ सकते।

हम अपनी दृष्टिसे देखनेपर इतना ही समझ पाते हैं कि जिस प्रकार माता-पिता अपनी संतानके कष्टको नहीं देख सकते, वे आन्तरिक प्रेरणासे उसके कष्टके निवारणके लिये प्रवृत्त हो ही जाते हैं, जिस प्रकार जननी अपने शिशुके कष्टनिवारणार्थ स्वतः प्रवृत्त होती है और उसके बिना वह मौन बैठी नहीं रह सकती, उसी प्रकार जिन महापुरुषोंने हमारी दृष्टिसे अन्योंके कष्टनिवारणार्थ अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया है, वह उनकी मातृवत् आन्तरिक प्रवृत्ति ही है। इसके बिना वे सुखसे नहीं बैठ सकते।

यह उत्कृष्ट भाव ही उन्हें अपनी क्षुद्र भावनाओंसे ऊपर उठाकर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अथवा भगवती श्रुतिके शब्दोंमें 'एकत्वमनुपश्यतः' (यजु० ४०। ७) इस एकत्वकी आन्तरिक प्रेरणासे आप्लावित कर देता है और इस प्रेरणासे ही सेवाभाव अपने-आप प्रस्फुटित होता है, जहाँ मोह तथा शोक प्रकाशमें अन्धकारकी भाँति विलीन हो जाते हैं। जब यह वात्सल्य और श्रद्धाकी भावना अपनी क्षुद्र सीमाओंका अतिक्रमणकर जीवमात्रमें प्रकट होती है, वही लोकमें सेवाका चरमोत्कर्ष भावके रूपमें अभिव्यक्तिकरण होता है और यह सेवाका भाव प्रस्फुटित होता है-समत्व या एकत्वदर्शन से।

इसलिये वेदके अनुसार सेवाका आधार श्रद्धा एवं वात्सल्य है। इस प्रकारकी उत्कृष्ट भावनाएँ ही परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वकी सेवाके लिये मनुष्यको प्रेरित करती हैं। इसी भावनासे ओत-प्रोत कभी-कभी हिंस्र जन्तुओंमें भी कल्पनातीत सेवाका भाव दृष्टिगोचर होता है।

स्मृतिवाङ्मय में सेवा धर्म की महिमा

डॉ० श्रीनिवासजी आचार्य

'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।' (मनुस्मृति २।१०)

श्रुतिको वेद तथा स्मृतिको धर्मशास्त्र जानना चाहिये। धर्म वह है, जो सम्पूर्ण प्रजाको धारण करे-'धारणाद् धर्ममित्याहुः।' वह धर्म वेदविहित है और तदनुकूल स्मृतियोंमें उसका विशद रूपसे वर्णन किया गया है। श्शास्यते अनेनेति शास्त्रम्य इस व्युत्पत्तिसे जो मानवोंको शासित-अनुशासित करता है, वह शास्त्र कहलाता है। प्रत्येक वस्तुको जिस प्रयोजनके लिये भगवान्ने रचा है, उस प्रयोजनकी परिपूर्ति करना ही उस वस्तुका धर्म है। अग्निका धर्म है उष्णता। अग्निमें उष्णता न रहे तो वह भस्म होगी, अग्नि नहीं रहेगी। इस प्रकार मनुष्यमें धर्म न हो तो द्विपाद होकर भी चतुष्पाद-पशु या पिशाच भले हो, मनुष्य नहीं कहला सकता।

> **निःस्वार्थभावसे कुआँ, बावड़ी, तालाब, देवालय, धर्मशाला, विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय, मन्दिर, गोशाला आदि बनवाना तथा उनका जीर्णोद्धार करना और छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाना तथा मार्ग आदि बनवाना-ये सभी लोकोपकारी सेवा एवं जनहितके कार्य करना-करवाना पूर्तधर्म कहलाता है। कलियुगमें यह लोकोपकारी सेवा है। आचार्य बृहस्पतिने पूर्त-धर्मकी विशेष महिमा गायी है और कहा है कि जो नये तालाबका निर्माण करवाता है अथवा पुराने तालाबका जीर्णोद्धार कराता है, वह अपने कुलका उद्धार कर देता है और स्वयं भी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।**

मानवका धर्म है-जगत्में जितने प्राणी हैं, उन सबकी जीवनयात्रा सुविधासे जैसे चले, ऐसा लक्ष्य निर्धारितकर जो धर्म वेदोंमें और शास्त्रोंमें विहित हैं, उनके आचरणसे अपना और जनसमुदायका भला करना। यही धर्मका रक्षण है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परोपकार, सेवा आदि मानवजातिमात्रके सामान्य धर्म हैं।

सेवाका समानार्थक शब्द शुश्रूषा है। अमरकोषके अनुसार सेवाके चार नाम है-वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या और उपासना-

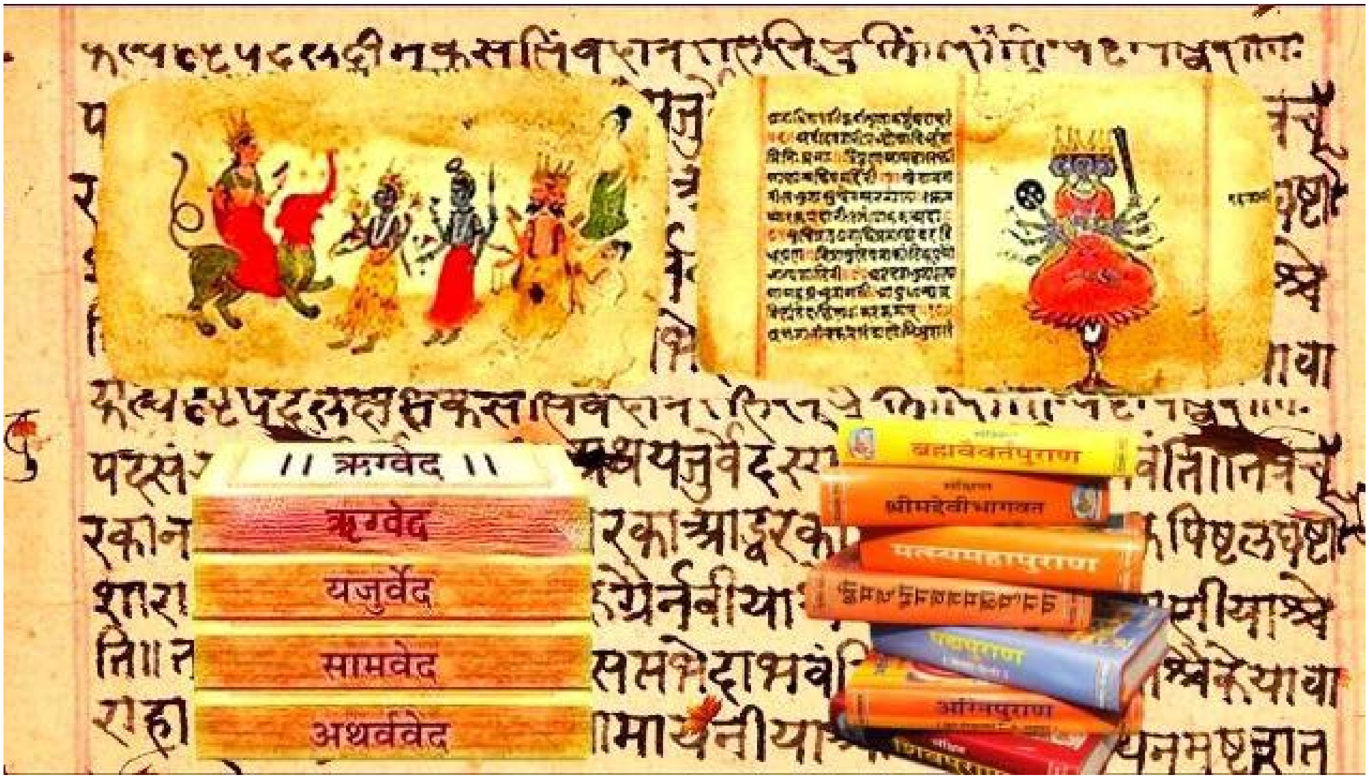

'वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याप्युपासना।'

(२।७।३५)

स्मृतिवाङ्मयमें सेवा-धर्मकी महिमा विस्तारपूर्वक वर्णित है। मनुस्मृतिमें वृद्धोंकी सेवा तथा अभिवादन-शीलताको महान् धर्म बताया गया है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनु० २।१२१)

जिसका प्रणाम करनेका स्वभाव है और जो नित्य वृद्धोंकी सेवा करता है, उसके आयु, विद्या, यश और बल-ये चारों बढ़ते हैं।

माताकी भक्तिसे मनुष्य इस लोकको, पिताकी भक्तिसे मध्यलोकको और गुरुकी भक्तिसे ब्रह्मलोकको प्राप्त कर लेता है। (मनु० २।२३३) इन तीनोंकी सेवा बड़ा भारी तप कहा गया है, अतः इन तीनोंकी आज्ञाके बिना अन्य किसी धर्मका आचरण न करे।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥

(मनु० २।२३७)

मनु-याज्ञवल्क्यादि महर्षियोंकी स्मृतियोंमें पंचमहायज्ञ करनेका विधान गृहस्थाश्रमियोंके लिये बतलाया गया है। जो कर्तव्यरूपमें सेवाका निर्वहन है। वेदका अध्ययन और अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण करना पितृयज्ञ है, हवन करना देवयज्ञ है, बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ है तथा अतिथिका भोजन आदिसे सत्कार करना नृयज्ञ है। (मनु० ३।७०) पितरोंको जलांजलि देना, तर्पण करना जलदानकी सेवा है।

वसिष्ठधर्मसूत्रके आठवें अध्यायमें गृहस्थ-धर्मका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। उसमें विशेषरूपसे अतिथि-सेवाको महत्त्व दिया गया है और कहा गया है कि घरमें आये हुए अतिथिका उठकर स्वागत करे, उसे आसन प्रदान करे, उसके शयनकी व्यवस्था करे, उसके साथ मधुर वाणीका प्रयोग करे और असूयारहित होकर उसका आदर-सम्मान करे-

'गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासन-शयनवाकसूनृतानसूयाभिर्मानयेत्।'

(वसिष्ठ० ८।१२)

पथिकको अतिथि समझना चाहिये। श्रोत्रिय (अर्थात् वेदपाठी) और वेदका पण्डित (यदि पथिक हो तो) ब्रह्मलोककी कामना रखनेवाले गृहस्थके लिये ये दोनों मान्य अतिथि होते हैं। (याज्ञ० आचाराध्याय ११२)

चारों आश्रमोंमें गृहस्थका ही विशेष गौरव है। सभी भिक्षार्थी (अर्थात् ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी) गृहस्थका ही आश्रय लेकर स्थित रहते हैं। इसलिये गृहस्थाश्रमीको चाहिये कि वह यथाशक्ति अन्न-जल आदिके द्वारा सभी प्राणियोंकी सेवा करे, यह गृहस्थाश्रमका मुख्यधर्म है-

'यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि।'

(वसिष्ठ० ८।१३)

भूख और प्यास प्राणोंकी पहचान है और शरीरकी इन दोनों अनिवार्य आवश्यकताओंके उपशमनके लिये निर्विवाद रूपसे अन्न और जल ही अपेक्षित होते हैं। भूखे-प्यासे व्यक्तिके लिये अन्न और जलके अतिरिक्त अन्य कोई भी विकल्प नहीं है-

अन्नं ब्रह्म इति प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः॥
वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः।
वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति॥

(स्कन्दपु० ब्राह्मखण्ड, चातुर्मास्य-माहात्म्य ३।२-३)

अर्थात् अन्नको ब्रह्म कहा गया है और सबके प्राण अन्नमें ही प्रतिष्ठित हैं। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अन्न और जलका दान निरन्तर करता रहे। जलदाताको जीवनमें सन्तोष प्राप्त होता है और अन्नदाताको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है, क्योंकि अन्नदान और जलदानके समान न कोई दान है और न ही कभी भविष्यमें होगा।

अतएव अन्नदान और जलदानको सर्वोत्कृष्ट सेवाके रूपमें स्वीकार किया गया है। दक्षस्मृतिमें उल्लेख है कि गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमोंकी योनि है। इसीमें सभी आश्रमके प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, अतः यह सभीका आधार भी है और आश्रय भी है। सद्गृहस्थ नित्य पंच यज्ञोंके द्वारा, श्राद्ध-तर्पणद्वारा और यज्ञ-दान एवं अतिथि-सेवा आदिके द्वारा सबका भरण-पोषण करता है, सबकी सेवा करता है, इसलिये वह सबसे श्रेष्ठ कहा गया है।

देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः
दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा योगः कृतज्ञता।
एते यस्य गुणाः सन्ति स गृही मुख्य उच्यते।

(दक्षस्मृति १।४५)

प्रजापति दक्षजीका प्रत्येक गृहस्थके लिये निर्देश है कि अपने द्वारा भरण-पोषण किये जानेयोग्य जो भी हों, उनकी सेवा करना गृहस्थका मुख्य कर्तव्य है। दक्षजीने माता, पिता, गुरु, भार्या, प्रजा, दीन-दुखी, आश्रित व्यक्ति, अतिथि, ज्ञातिजन, बन्धु-बान्धव, विकलांग, अनाथ, शरणागत तथा अन्य जो कोई भी सेवक तथा धनहीन व्यक्ति हों, उन सभीको पोष्यवर्गके अन्तर्गत माना है। पोष्यवर्गकी कभी उपेक्षा न करे, न सताये, आदर दे और अन्न, वस्त्र, औषधि आदिसे परमधर्म एवं परम कर्तव्य समझकर सदा उनकी सेवा करे, ऐसा करनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नरक-यातना भोगनी पड़ती है।

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्॥
नरकं पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्।

(दक्ष० २।३०-३१)

भूतयज्ञके विषयमें मनुस्मृतिमें उक्त है कि-

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

(३।९२)

कुत्ता, पतित, चाण्डाल, कुष्ठी अथवा यक्ष्मादि पापजन्य रोगी व्यक्तिको तथा कौवों, चींटी और कीड़ों आदिके लिये अन्नको पात्रसे निकालकर धीरेसे (स्वच्छ) भूमिपर रख दे। गो-ग्रास देना बड़ा पुण्यप्रद है। भूतयज्ञसे विभिन्न प्राणियोंकी सेवा होती है।

भगवान् वेदव्यासने नृयज्ञ या अतिथि-सेवाकी व्याख्या करते हुए कहा है-'अतिथिको नेत्र दे (प्रेमभरी दृष्टिसे देखे), मन दे (हृदयसे उसका हित-चिन्तन करे) तथा मधुर वाणी प्रदान करे। जब वह प्रस्थान करे तबतक उसकी सेवामें निरत रहे। मनुष्यको 'अतिथिदेवो भव', 'अतिथि देवस्वरूप है' के वास्तविक अर्थको समझना नितान्त आवश्यक है। सभीको यह चाहिये कि आतिथ्य-धर्मका पालन करते हुए समस्त प्राणियोंमें व्याप्त विश्वात्मा भगवान की सेवाका पुण्यफल प्राप्त करें।'

निःस्वार्थभावसे कुआँ, बावड़ी, तालाब, देवालय, धर्मशाला, विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय, मन्दिर, गोशाला आदि बनवाना तथा उनका जीर्णोद्धार करना और छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाना तथा मार्ग आदि बनवाना-ये सभी लोकोपकारी सेवा एवं जनहितके कार्य करना-करवाना पूर्तधर्म कहलाता है। कलियुगमें यह लोकोपकारी सेवा है। आचार्य बृहस्पतिने पूर्त-धर्मकी विशेष महिमा गायी है और कहा है कि जो नये तालाबका निर्माण करवाता है अथवा पुराने तालाबका जीर्णोद्धार कराता है, वह अपने कुलका उद्धार कर देता है और स्वयं भी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुराने बावड़ी, कुआँ, तालाब, बाग-बगीचेका जीर्णोद्धार करानेवाला नये तालाब आदि बनवानेका फल प्राप्त करता है। जिसके बनाये हुए तालाब आदिमें गर्मीके दिनोंमें भी पानी बना रहता है, सूखता नहीं, उसे कभी कठोर विषम दुःख प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह सर्वदा सुखी रहता है-

यस्तडागं नवं कुर्यात् पुराणं वापि खानयेत्।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गे लोके महीयते॥
वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च।
पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौलिकं फलम्॥
निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव।
स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात्॥

(बृहस्पतिस्मृति ६२-६४)

विष्णुधर्मसूत्र (९१।१-२)-के मतसे जो व्यक्ति जन-सेवाके लिये कूप खुदवाता है, उसके आधे पाप उसमें पानी निकालनेके समय ही नष्ट हो जाते हैं, जो व्यक्ति तालाब खुदवाता है, वह सदा प्रसन्न (निष्पाप) रहता है और वह वरुणलोकमें निवास करता है। कुछ ऋषियोंने तो यहाँतक कहा है कि यज्ञोंसे केवल स्वर्ग

मिलता है, किंतु पूर्त अर्थात् मन्दिरों, तालाबों एवं वाटिकाओंके निर्माणसे संसारसे मुक्ति हो जाती है।

इष्टापूर्तौ स्मृतौ धर्मो श्रुतौ तौ शिष्टसम्मतौ।
प्रतिष्ठाद्यं तयो पूर्तमिष्टं यज्ञादिलक्षणम्॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं पूर्तमिष्टं भोगार्थसाधनम्॥

(कृत्यरत्नाकर १०)

महर्षि मनुका निर्देश है कि राजा तड़ाग, कुएँ, बावड़ी, झरने और देवोंके मन्दिरोंको दो सीमाओंके सन्धिस्थलमें बनवाये-

तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च।
सीमासन्धिषु कार्याणि देवतायतनानि च॥

(मनु० ८। २४८)

वृक्षसेवा एवं वृक्षारोपण-भारतमें वृक्षोंकी महत्ता, उपादेयता सभी कालोंमें गायी गयी है। वृक्ष धूपसे बचाते हैं तथा देवों एवं पितरोंको चढ़ानेके लिये पुष्प, फल देते हैं। गिर जानेपर उनकी लकडियोंसे घर बनाते हैं। उनसे नाना प्रकारके सामान बनाये जाते हैं तथा उन्हें जलाकर भोजन बनाया जाता है एवं शीतसे रक्षा की जाती है। महाभाष्यमें एक अति प्राचीन पद्यका अंश उद्धृत किया गया है, जिसका तात्पर्य है कि जो आमको पानी देता है और उसकी सेवा करता है, उसके पितृगण उससे प्रसन्न रहते हैं।

मनुस्मृतिके अनुसार राजा सीमापर बड़, पीपल, पलाश, सेमल, साल, ताड़ और दूधवाले (गूलर आदि) पेड़ोंको लगवाये-

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्।
शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्॥

(मनु० ८। २४६)

वृक्ष आदि सब पौधोंके फल, फूल, पत्ता, लकड़ी आदिके द्वारा जैसा-जैसा उपभोग हो, उनको नष्ट करनेवाले अपराधीको वैसा-वैसा ही दण्ड देना चाहिये-ऐसा शास्त्रनिर्णय है-

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा॥

(मनु० ८। २८५)

महाभारत (अनुशासन पर्व ५८। २३-३२)-में पेड़-पौधोंके जीवनकी प्रभूत प्रशंसा की गयी है और उन्हें छः भागोंमें बाँटा गया है, यथा-वृक्ष, लता, वल्ली, गुल्म, त्वक्सार एवं घास। महाभारतमें उल्लेख है कि जो वृक्ष लगाते हैं, वे उनसे रक्षा पाते हैं। अतः वृक्षोंकी सेवा पुत्रोंके समान करनी चाहिये। यही बात दूसरे ढंगसे विष्णुधर्मसूत्र (२९। ४)- में कही गयी है। हेमाद्रि (दानखण्ड)-में बताया गया है कि किस प्रकार अश्वत्थ, अशोक, अम्लिका, दाडिम्म आदि पेड़-पौधे लगाकर उनकी सेवा करनेसे क्रमसे सम्पत्ति, पापमोचन, दीर्घायु, स्त्री आदिकी प्राप्ति होती है। उत्सर्गमयूखमें उल्लेख है कि जो व्यक्ति एक अश्वत्थ या एक पिचुमर्द (नीम) या एक न्यग्रोध या दस इमली या तीन कपित्थ, बिल्व तथा आमलक या पाँच आमके पेड़ लगाता है, वह नरकमें नहीं जाता-

अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकम्।
कपित्थबिल्वामलकत्रयं च पञ्चाम्ररोपी नरकं न पश्येद्॥

(उत्सर्गमयूख राजधर्मकौस्तुभ)

पीपल, केला, तुलसी, आँवला आदि देववृक्षोंका जलसिंचन भी एक प्रकारकी जलदानसेवा है।

चिकित्सालयकी स्थापनापूर्वक रोगियोंकी सेवाकी प्रेरणा स्मृतिशास्त्रसे प्राप्त होती है। चिकित्सालयमें औषधें निःशुल्क दी जानी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थ स्वास्थ्यपर निर्भर हैं, अतः स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिये जो प्रबन्ध करता है, वह सभी प्रकारकी वस्तुओंका दानी कहा जाता है। इसके लिये एक अच्छे चिकित्सककी नियुक्ति करनी चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है कि थके हुए के कष्टको आसन, बिस्तर आदि देकर दूर करना, रोगीकी सेवा, देवताओंकी पूजा, द्विजोंका पैर धोना कर्म गोदानके तुल्य होते हैं-

श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम्।
पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत्॥

(याज्ञ० १। २०९)

ऋषियोंद्वारा प्रणीत स्मृतिवाङ्मय अत्यन्त विशाल एवं व्यापक है। उसमें यत्र-तत्र कलियुगके प्रमुख धार्मिक कृत्य सेवाधर्मकी अनन्त महिमा निरूपित की गयी है। अतएव इसे अपनानेसे इहलोकका जीवन सुखमय और परलोक श्रेयस्कर होगा।

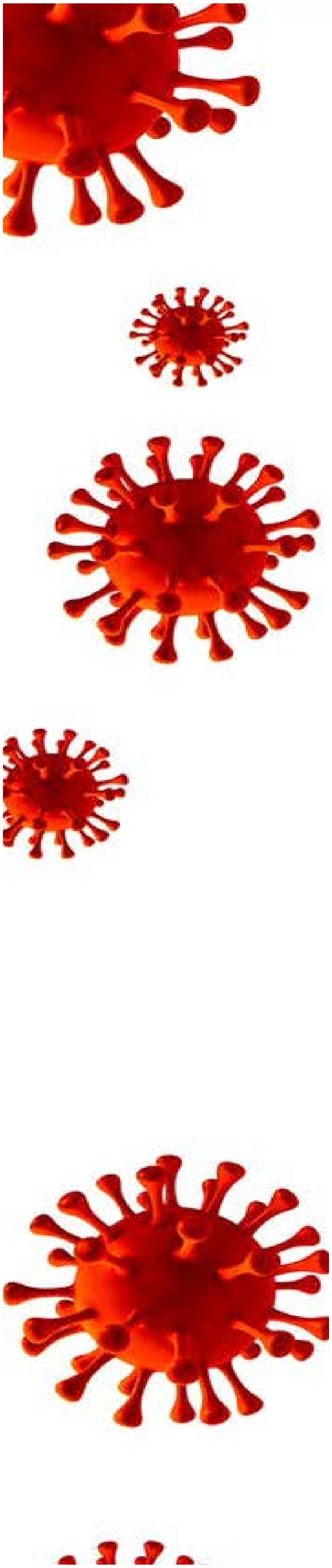

वैश्विक आपदा

कोरोना

काल में सेवा

संघ परिवार : संस्कार, सेवा और संकल्प

हर बार आपदा में लोकहित के लिए लगा दिया है सर्वस्व

डॉ अर्चना तिवारी

> देशभर में आंकड़ों की दृष्टि से, इस समय संघ परिवार द्वारा करीब 60,000 सेवा-प्रकल्प चलाए जा रहे हैं। ये प्रकल्प देश के 30 प्रांतों में 12,000 से अधिक स्थानों पर चल रहे हैं। ये सेवा कार्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर केंद्रित हैं, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक विकास व अन्यान्य क्षेत्र। भौगोलिक दृष्टि से 16,000 से अधिक सेवा कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में, 4,000 से अधिक वनवासी क्षेत्रों में, 3,000 से अधिक सेवा बस्तियों में और शेष स्थानों पर 1,000 से अधिक सेवा कार्य चल रहे हैं। संघ कार्य को सफल बनाने हेतु लाखों स्वयंसेवकों ने असीम त्याग किया है।

संघ एक संगठन है। उससे पहले यह परिवार है। उससे पहले यह स्वयं में मानव निर्माण की संस्कारशाला है। इसकी संकल्पशक्ति अद्भुत है। जब भी मनुष्यता पर कोई संकट आता है, संघ अपनी पूरी ताकत से उस संकट को खत्म करने में लगता है। आपदा चाहे प्राकृतिक हो, जैवीय हो, दैवीय हो या मानव निर्मित , संघ परिवार सबसे पहले मानवता की रक्षा में आगे आकर खड़ा होता है। ऐसा अनगिनत अवसरों पर देखा और परखा जा चुका है। युद्धकाल से लेकर प्राकृतिक आपदाओं तक मे संघ के स्वयंसेवक सबसे पहले आगे आते हैं। सेवा और मानवहित के संकल्प ही संघ को एक परिवार बनाते हैं। इस बार विगत दो वर्षों में दुनिया ने जिस त्रासदी को कोरोना संक्रमण के रूप में झेला है इसमे दुनिया की अनगिनत मानववादी संस्थाओं ने मानव जीवन की रक्षा में अपने को लगाया और लोगों की सेवा की। भला राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ इसमे कैसे पीछे रहता। भारत मे जिस प्रकार से यह त्रासदी अपने पांव पसार रही थी उसे गति से संघ भी अपने स्वयंसेवकों को तैयार कर इसके मुकाबले के लिए लगा रहा था। यह सब केवल किसी नगर, प्रान्त या क्षेत्र में ही नही हो रहा था बल्कि पूरे देश के कोने कोने में गांव से लेकर नगरों और महानगरों तक मे संघ के स्वयंसेवकों ने दवा, भोजन, अस्पताल, कवरन्टीन केंद्र आदि की व्यवस्थाएं संभाल रहे थे। स्वयंसेवकों ने अनेक स्थानों पर सैकड़ो बिस्तरों वाले अस्पताल भी बना डाला। खास बात तो यह कि इतने सघन सेवाकार्य में लगे किसी स्वयंसेवक ने कभी भी किसी प्रसार या प्रचार माध्यम में खुद को दिखाने और प्रसारित करने की कोशिश तक नही की।

यह सर्वविदित है कि संघ अनुशासन सिखाता है, निर्भीक होना सिखाता है, दूसरों के दुःख में सहभागी बनना सिखाता है, राष्ट्र को देवी के रूप में पूजना और उसकी आराधना करना सिखाता है। संघ के रूप में हिंदुस्थान में ऐसा गैर राजनीतिक संगठन खड़ा है जो हर खतरे से देश और उसके वासियों की रक्षा करने को तत्पर रहता है। संघ का मंत्र है हिंदू संगठन, चिन्ह है भगवाध्वज, जिसे गुरु माना जाता है। गणवेश और लाठी ही संघ का विशिष्ट वेश और सज्जा है। संघ के अपने कुछ त्योहार भी हैं जिन्हें सामाजिक समरसता के लिहाज से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। विजयदशमी, मकर संक्रांति, वर्ष-प्रतिपदा, हिंदू साम्राज्य दिनोत्सव (शिवाजी राज्याभिषेक), रक्षाबंधन और गुरु पूर्णिमा पर्व को मनाने के पीछे संघ का उद्देश्य हिंदू संस्कृति, साहस, शौर्य, त्याग, शिक्षा, उत्साह इत्यादि को उचित मान-सम्मान दिया जाना है।

इस समय मोटे तौर पर देशभर में करीब 1 लाख 60 हज़ार सेवा केंद्र स्वयंसेवकों द्वारा चलाए जा रहे हैं। संघ ने देशहित में 2014 के आम चुनाव में परिवर्तन का समर्थन, 100 प्रतिशत मतदान का आव्हान किया। संघ के प्रयासों से ही जनता मताधिकार के लिए जागरूक हुई और उसने बड़ी संख्या में लोकतंत्र रूपी यज्ञ में भाग लिया। ग्रामीण भारत के बारे में भी संघ की स्पष्ट अवधारणा है। हिंदुस्थान गांवों में बसता है अतः गांवों के लोग शिक्षित हों, गांव सुंदर व स्वच्छ हों, इनमें पर्यावरण और चिकित्सा आदि शामिल हो। भेदभाव न हो, गांव की आवश्यकता गांव में ही पूरी हो। गांव के लोग अपनी योजनाएं खुद बनाएं। योजनाओं के क्रियान्वयन में शासन का सहयोग प्राप्त हो ताकि गांवों का सही अर्थों में विकास हो सके। संघ हमेशा शोषित एवं वंचित हिंदू तबके का पक्षधर है। संघ का मानना है कि जब तक अंतिम व्यक्ति तक देशभक्ति की ज्योत नहीं पहुंचेगी, वह राष्ट्र की उन्नति में कोई योगदान नहीं दे सकता। संघ और उसके प्रकल्पों ने हमेशा ही समाज को जोड़ने और उन्हें देशभक्ति का पाठ पढ़ाने का पुनीत कार्य किया है। भारतीय किसान संघ, भारतीय मज़दूर संघ, संस्कार भारती, दुर्गा वाहिनी, सेवा भारती, राष्ट्र सेविका समिति, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, दीनदयाल शोध संस्थान, शिक्षा भारती, संस्कृत भारती, विश्व हिंदू परिषद, हिंदू स्वयंसेवक संघ, स्वदेशी जागरण मंच, विद्या भारती, सरस्वती शिशु मंदिर, वनवासी कल्याण आश्रम, बजरंग दल, राष्ट्रीय मुस्लिम मंच, अनुसूचित जाति-जनजाति आरक्षण बचाओ परिषद, भारतीय विचार केंद्र, विश्व संवाद केंद्र, राष्ट्रीय सिख संगत, विवेकानंद केंद्र जैसे कई प्रकल्पों ने राष्ट्रभक्ति जगाने और सेवा कार्य का जो बीड़ा उठाया है, उसमें वे शत-प्रतिशत सफल हैं।

देशभर में आंकड़ों की दृष्टि से, इस समय संघ परिवार द्वारा करीब 60,000 सेवा-प्रकल्प चलाए जा रहे हैं। ये प्रकल्प देश

के 30 प्रांतों में 12,000 से अधिक स्थानों पर चल रहे हैं। ये सेवा कार्य भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर केंद्रित हैं, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक विकास व अन्यान्य क्षेत्र। भौगोलिक दृष्टि से 16,000 से अधिक सेवा कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में, 4,000 से अधिक वनवासी क्षेत्रों में, 3,000 से अधिक सेवा बस्तियों में और शेष स्थानों पर 1,000 से अधिक सेवा कार्य चल रहे हैं। संघ कार्य को सफल बनाने हेतु लाखों स्वयंसेवकों ने असीम त्याग किया है। संघ चरैवेति-चरैवेति के सिद्धांत पर अग्रसर है और वह दिन दूर नहीं जब हिंदुस्थान का प्रत्येक हिंदू नागरिक संघ और उसके विचारों के साथ खड़ा होकर राष्ट्र की उन्नति और उसके विकास में योगदान देगा।

दिल्ली

दिल्ली प्रांत में सेवा भारती ने छह आइसोलेशन सेंटर अशोक विहार, उदासीन आश्रम, नरेला, द्वारका, हरिनगर और लाजपत जिले की अमर कॉलोनी में संचालित किया जबकि नौ अन्य सेंटर भी संचालन स्तर पर बाद में आये । इन आइसोलेशन सेंटर के जरिए लगभग 450 बेड की व्यवस्था कर दी गई ।

प्रशासन से ऑक्सीजन सुविधा मिलने पर इसे एक हजार बेड तक विस्तारित करने की योजना बनी। सभी आइसोलेशन सेंटर में मेडिकल ऑक्सीजन मुहैया कराई गयी ।

लाजपत नगर के सरस्वती बाल मंदिर में 35 बेड की सुविधा प्रदान की गई , जिसे 50 बेड तक विस्तारित किया गया। अशोक विहार में 100 बेड का कोविड केयर सेंटर संचालित किया गया इसे 200 बेड तक विस्तारित करने की योजना बनी। इसके अलावा श्री गुरु राम राय उदासीन आश्रम के आइसोलेशन सेंटर में 33 बेड और नरेला में 13 बेड के आइसोलेशन केंद्र संचालित किए जा रहे थे। संघ से जुड़े डॉक्टर, नर्सें और अन्य सेवादार इन सेंटरों में लोगों की हर तरह से सेवा कर रहे थे ।

लखनऊ

लखनऊ में तेजी से बढ़ रही संक्रमितों की संख्या के साथ लोगों को बेड, ऑक्सीजन, मेडिकल उपकरण और दवाइयों की जरूरत भी बढ़ती जा रही थी। ऐसे में कई सामाजिक संगठन और राजनीतिक पार्टियों से जुड़े लोग जरूरतमंदों की मदद के लिए आगे आए, जिनकी तस्वीरें सोशल मीडिया पर तेजी से वायरल हुईं। लेकिन, इन सबके बीच एक संगठन ऐसा भी था, जो सोशल मीडिया से मिलने वाली प्रतिष्ठा और सम्मान से दूर अदृश्य होकर लोगों की सेवा में जुट गया था और आज भी लगातार सेवा कार्य ही कर रहा है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की लखनऊ महानगर की इकाई के हजारों स्वयंसेवकों ने कोरोना महामारी के दूसरे चरण में संक्रमण से जूझ रहे लोगों की सेवा के कार्य को ही अपना उद्देश्य बनाकर दिन रात लोगों की समस्याओं का निस्तारण किया। बिना किसी दिखावे के स्वयंसेवकों की ओर से किए जा रहे इस सेवाकार्य की किसी को भनक तक नहीं लगी और स्वयंसेवकों की इस चैन ने देखते ही देखते लाखों लोगों को जीवनदान देने का कार्य किया।

ग्राउंड जीरो पर हुआ काम

अप्रैल माह में कोरोना के दूसरे चरण के शुरू होते ही

आरएसएस के स्वयंसेवकों ने लोगों की मदद करने के लिए मोर्चा संभाल लिया था। गंभीर परिस्थितियों को देखते ही लखनऊ महानगर के स्तर का 10 से 15 स्वयंसेवकों का एक वॉट्सऐप ग्रुप बनाया गया। इस ग्रुप के स्वयंसेवकों ने 4 भागों में बटे लखनऊ के 4 अलग-अलग ग्रुप बनाये और उसी प्रकार इन भागों में बने 40 नगरों के अलग ग्रुप बने। सबसे अंत मे संगठन की ओर से इन नगरों में बनाई गई बस्तियों के आपदा प्रबंधन के नाम से अन्य ग्रुप बनाए गए, जिनमें 70 से 80 सक्रिय स्वयंसेवकों को जोड़ा गया। इस लिहाज से व्यवस्थाओं को सही करने और लोगों की मदद करने के लिए तकरीबन 100 से अधिक ग्रुप तैयार हुए, जिनमें 2500 स्वयंसेवकों ने एक साथ मोर्चा संभाला। उन्होंने बताया कि महानगर के किसी भी स्थान पर यदि किसी मरीज को आवश्यकता पड़ती थी तो उसकी सूचना आपदा प्रबंधन के ग्रुप में बढ़ा दी जाती थी, फिर जो भी स्वयंसेवक उस समस्या का समाधान करने में सक्षम होता था, वह तत्काल मौके पर पहुंचकर उनकी मदद करता था।

यह तो दो नगरों का उदाहरण भर है। ऐसे हजारों की संख्या में दल पूरे आपदाकाल में सक्रिय रहे हैं। बिहार, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, असम , केरल, कर्नाटक, तेलंगाना से लेकर पूर्वोत्तर के सुदूरवर्ती दुर्गम इलाको में भी संघ के स्वयंसेवक पूरे मनोयोग से सेवा कार्य मे लगे थे । कई स्थानों पर संघ के लोगों ने बड़े बड़े अस्पतालों और भोजनालयों का संचालन किया। जहां भी , जब भी लोगो ने मदद के लिए आवाज लगाई स्वयंसेवक वहां पहुचे भी और हर संभव सहायता भी की।

कोरोना और बाढ़ की त्रासदी में सनातन संस्कार

सेवा और स्वावलंबन के लिए संजय राय शेरपुरिया का संकल्प

संजय मानव

सनातन भारत के ऋषियों की पवित्र भूमि पर कोई मनुष्य संस्कारों से वंचित न रहे। इन्ही संकल्पों के साथ संजय राय ने अपनी नई यात्रा शुरू की। कोरोना काल मे जब लोगो के अंतिम संस्कार के लिए लकड़ियां नहीं मिल रही थीं उस समय उन्होंने अथक परिश्रम कर के लकड़ी बैंक की स्थापना की ।

वर्तमान पीढ़ी ने पहली विश्व की इतनी भीषण त्रासदी को देखा और अनुभव किया है। कोरोना की आपदा कुछ ऐसी थी कि विभिन्न प्रकार के उपकरण, व्यवस्थाएं और शोध पराजित होते दिखे। मनुष्य हतप्रभ, निराश और कहीं न कहीं असमंजस में था। अमेरिका और यूरोप की बड़ी-बड़ी अर्थव्यवस्थाएं असहाय नजर आ रही थीं। भारत के शहर और गांव इससे अछूते नहीं थे लेकिन भारत ने दुनिया के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। हमारे यहां सरकार और प्रशासन के साथ समाजशक्ति ने अपने दायित्व और कर्तव्यों का जिस प्रकार निर्वहन किया, उसे दुनिया ने देखा। इस महामारी काल में भारत ने जिस भाव को प्रगट किया, वह दुनिया में कहीं और देखने को नहीं मिला। वह सभी भविष्यवाणियां एक बार पुनः गलत सिद्ध हुईं जो भारत को समझे बिना की जाती हैं। हमारा देश जो भौगोलिक रूप से दिखता है, मात्र वही नहीं है। भारत एक प्रेम की भाषा प्रकट करता है। दुनियाभर को इसने सहकार और संस्कार सिखाया। यह भावनाओं का देश है।

कोरोना की त्रासदी में देश की हर सामाजिक और धार्मिक संस्था ने अपने सामथ्र्य के अनुसार सेवा कार्य किए। सेवा हजारों वर्षो से दर्शन और सनातन संस्कार का अभिन्न अंग है। इस आध्यात्म की पूंजी को लेकर ही भारतीय समाज आगे बढ़ता है। इसी त्रासदी के बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश में बाढ़ की विभीषिका भी आफत बन कर आ गयी। ऐसे में भारत माता के होनहार सपूतोऔर सेवा संकल्प के साथ जीवन बचाने उतरे लोगों ने ऐसा बहुत कुछ किया जिस पर लिखने बैठें तो बहुत मोटे मोटे ग्रंथ भी कम पड़ेंगे। ऐसा ही एक नाम है संजय राय शेरपुरिया का। मूलतः उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में शेरपुर गांव के रहने वाले संजय राय की कर्मभूमि वैसे तो गुजरात रही है लेकिन अपदाकाल में उनकी मातृभूमि ने जब पुकारा तो अपना सारा कारोबार और अपनी सुख सुविधाओं का त्याग कर संजय राय अपने पुरखों की भूमि की सेवा के लिए निकल पड़े।

पुरखों की धरती की सेवा से संतुष्टि

संवेदना और सहकार रूपी पूंजी का पश्चिम जगत में अभाव है। यही मौलिक अंतर है। कोरोना की वीभीषिका से हम इसलिए भी उठ खड़े हुए, क्योंकि दूसरों की सेवा करने में यहां लोगों को आनंद आता है। दुनिया को बोध कराने का दायित्व भी हमारा है। आज दुनिया इस बात का साक्षात्कार कर रही है कि कैसे भारत ने समाज की समवेत शक्ति के आधार पर कोरोना की त्रासदी पर विजय प्राप्त की है। गाजीपुर में कोरोना का कहर तो था ही, यहां की बाढ़ की विभीषिका ने भी बहुत पीड़ित किया। ऐसे में सेवा के साथ साथ संजय राय शेरपुरिया ने सोचा कि कैसे यहां के नौजवानों को आत्मनिर्भर भी बनाया जाय जिससे यह क्षेत्र हमेशा के लिए अपने पैरों पर खड़ा हो सके। कुछ ऐसा हो कि मनुष्य के जन्म से लेकर अंतिम संस्कार तक की समस्त सुविधाएं यहां उपलब्ध हो सकें। सनातन भारत के ऋषियों की पवित्र भूमि पर कोई मनुष्य संस्कारों से वंचित न रहे। इन्ही संकल्पों के साथ संजय राय ने अपनी नई यात्रा शुरू की। कोरोना काल मे जब लोगो के अंतिम संस्कार के लिए लकड़ियां नहीं मिल रही थीं उस समय उन्होंने अथक परिश्रम कर के लकड़ी बैंक की स्थापना की । इसका परिणाम यह हुआ कि अब गाजीपुर के अलावा आसपास के इलाकों में भी लोग उनकी इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। उन्होंने गोबर से लकड़ी निर्माण की तकनीक भी विकसित की है जिसकी चर्चा विदेशी मीडिया में भी हो रही है।

अब न रहेगा कोई भी युवा बेरोजगार

संजय राय शेरपुरिया के नेतृत्व में यूथ रूरल एंटरप्रेन्योर फाउंडेशन ने पिछले दिनों रोजगार आप के द्वार और पर्यावरण जागरूकता को केंद्र में रखकर 2 अगस्त से 16 अगस्त तक गाजीपुर जिले में जन जागृति अभियान का आयोजन किया। इस दौरान फाउंडेशन के चीफ मेंटर संजय राय शेरपुरिया ने कुछ जरूरतमंदो को स्मार्ट कार्ट का प्रोटोटाइप भी भेंट किया।संजय राय शेरपुरिया का मानना है कि वह अपने कार्यों के जरिए सिर्फ व्यावसायिक दृष्टि से लोगों के बीच याद न किए जाए।वह ऐसा कुछ निरंतर करते रहना चाहते है कि उन्हें याद करने वाला उन्हें पहले उनकी इंसानियत के लिए याद करें फिर किसी और संदर्भों में। संजय राय शेरपुरिया के मार्गदर्शन में ग़ाज़ीपुर के विभिन्न ब्लाकों में जन जागरूकता अभियान के तहत जागरूकता रैली के दरमियान दुल्लहपुर के अमारी गेट से गुजरते समय श्री राय की निगाह राहुल कुमार नाम के एक बच्चें पर पड़ी।राहुल अपनी माँ

और बहन से साथ सड़क किनारे ठेले पर पकौडियां बेच रहा था। संजय राय शेरपुरिया ने जब राहुल से बातचीत की तो जानकारी मिली कि उसके पिता पिछले दिनों ह्दयाघात से स्वर्ग सिधार गए।अब राहुल के ऊपर ही अपने परिवार के भरण पोषण की जिम्मेदारी है। राहुल का अपने काम के प्रति समपर्ण देखकर श्री राय ने राहुल के परिजन को स्मार्ट कार्ट देने का मन बनाया।अपने इस निर्णय को लेकर संजय राय शेरपुरिया ने मीडिया को बताया कि जब उनकी निगाह राहुल और उसके परिजन पर पड़ी तो उनका अन्तःकरण जाग उठा और उन्हें उपनिषद् में लिखी एक बात याद आयी, जिसमें कहा है की, “क्षान्ति तुल्यं तपो नास्ति संतोषान्न सुखं परम, न चापत्यसमो स्नेहः न च धर्मो दायपरः”I उन्हें लगा की पिता की कमी तो कोई पूरी नहीं कर सकता लेकिन राहुल के परिवार की मदद कर वह राहुल के जीवन में रोजाना आने वाली चुनौतियों को कुछ हद तक कम करने में सक्रिय भूमिका निभा सकते है I इसी सोच के साथ उन्होंने राहुल की माँ को फाउंडेशन की तरफ से खास तौर पर डिज़ाइन किए गया स्मार्ट कार्ट उपलब्ध कराया ।श्री राय की इस पहल से उम्मीद है कि राहुल के जिंदगी में सकारात्मक बदलाव आएगा और वह अपने अन्य दोस्तों की तरह ही अब स्कूल जा सकेगा। फाउं डेशन की कार्यशैली को लेकर संजय राय शेरपुरिया ने मीडिया को बताया कि हम सिर्फ व्यावसायिक जरूरतों को ध्यान में रखकर काम करना नहीं चाहते, लेकिन हर इंसान को सम्मान के साथ जीविकापार्जन का जरिया उपलब्ध करवाकर, लोगों के जीवन में सकारात्मक बदलाव भी लाना चाहते है I

राहुल की तरह ही एक और उदाहरण का विनोद है,जिनको मदद कर फाउंडेशन ने उनके जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने की पहल की है। गाजीपुर में ही वृक्षारोपण अभियान के क्रम में ही सैदपुर तहसील में यूथ रूरल एंटरप्रेन्योर फाउं डेशन के चीफ मेंटर संजय राय ‘शेरपुरिया’ की निगाह सड़क किनारे भुट्टा भेचने वाले एक व्यक्ति पर पड़ी।अपने स्वभाव के अनुसार जब श्री राय ने उस व्यक्ति से बातचीत के दौरान उसका परिचय पूछा तो उसने बताया कि उनका नाम विनोद गौड़ है, वह वर्तमान में महमूदपुर गांव के ग्राम प्रधान हैं। जीवकोपार्जन के लिए वह लंबे समय से सड़क किनारे भुट्टा बेचते आ रहे हैं।

विनोद ने बताया कि हर दिन वह 200-300 रुपए का भुट्टा बेच लेते है।श्री राय ने विनोद को बताया कि उन जैसे ठेले खोमचे वालों के लिए उनके पास एक योजना है,जिससे वह प्रतिदिन करीब हज़ार रुपए की बिक्री कर पाएंगे।संजय राय ‘शेरपुरिया’

कोविड-19 सहायता हेतु लकड़ी
संजय राय "शेरपुरिया"

काम
हर जेब में दाम
YOUTH RURAL

विनोद गौड़ को बताया कि फाउंडेशन की पहल पर उन्हें स्मार्ट कार्ट दिया जाएगा।बैटरी संचालित स्मार्ट कार्ट की कीमत एक लाख है।विनोद को फाउंडेशन बैंक से लोन दिलाने में मदद करेगी।विनोद जैसे तमाम ठेले खोमचे वालों के लिए फाउंडेशन ने लंबे समय के शोध के बाद अलग-अलग बैटरी संचालित स्मार्ट कार्ट का निर्माण करवाया है ।जिसको बहुत ही कम डाउन पेमेंट कर हासिल किया जा सकता है।कार्ट/ठेला लेने वालों को फाउंडेशन सरकारी अनुदान और बैंक लोन की सहायता भी उपलब्ध कराएगा।विनोद को गाजीपुर में एक कार्यक्रम के दौरान फाउंडेशन की तरफ से स्मार्ट कार्ट उपलब्ध करवाया गया।

राहुल और विनोद जैसे लोगों के प्रति उदार व्यवहार करने के पीछे संजय राय शेरपुरिया का तर्क है कि उन्होंने जो कुछ भी अर्जित किया है,वह समाज के बीच रखकर किया है।वह जो कुछ भी कर रहें है, वह एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते सभी को करना चाहिए।मदद बड़ी या छोटी नहीं होती है,मदद को सिर्फ मदद के रूप में देखना चाहिए।हम सब को एक बेहतर समाज और राष्ट्र के निर्माण वास्ते एक दूसरे का हर स्तर पर साथ देना चाहिए।

गांव में जनसंवाद

सोशल एंटरप्रेन्योर संजय राय शेरपुरिया ग़ाज़ीपुर जनपद के शेरपुर गांव के मूल निवासी हैं।अपने गांव में गंगा नदी में आयी बाढ़ से हो रहे कटान और उसके दुष्प्रभाव को लेकर उन्होंने पिछले दिनों गांव में ही जनसंवाद किया। कार्यक्रम के दौरान उन्होंने विस्थापित लोगों की परेशानियों को जानने के साथ ही उसके निदान पर भी चर्चा की।इस बीच उन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयास से बाढ़ प्रभावित इलाकों में यथासंभव मदद पहुँचाने का भी प्रयास किया। 18 अगस्त ग़ाज़ीपुर ही नहीं बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।इसी दिन मुहम्मदाबाद तहसील पर तिरंगा फहराने को लेकर ब्रिटिश फ़ोर्स ने 8 शहीदों को गोलियों से भून दिया था।इस मौके पर श्री संजय राय शेरपुरिया ने मुहम्मदाबाद कांड में शामिल रहे अष्ठ शहीदों को पुष्पांजलि अर्पित कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा को जाहिर किया। गाजीपुर को शहीदों के धरती के तौर पर भी जाना जाता है।स्वतंत्रता संग्राम में 18 अगस्त के दिन मुहम्मदाबाद तहसील पर जहां ब्रिटिश सरकार ने 8 सेनानियों को गोली से छलनी कर दिया था।वहीं आजादी की चाह में सेनानियों ने नंदगंज थाने को आग के हवाले कर दिया था।1942 के आंदोलन के आंदोलन में गाजीपुर में घटित मुहम्मदाबाद तहसील कांड का स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अलग ही स्थान है।

शेरपुर और आसपास के गांवों में हो रही कटान को लेकर सोशल एंटरप्रेन्योर संजय राय शेरपुरिया चिंता जाहिर करते हुए कटान पीड़ितों के संघर्ष में कंधे से कंधा मिलाकर चलने का भरोसा दिया ।इसी भरोसे को कायम रखते हुए सोशल एंटरप्रेन्योर संजय राय शेरपुरिया के मार्गदर्शन में 18 अगस्त एक पदयात्रा निकाली गयी।पदयात्रा शेरपुर गांव से मुहम्मदाबाद तहसील तक निकाली गयी। इसके बाद गंगा कटान संघर्ष समिति के लोगों के साथ श्री राय ने जिला मुख्यालय पर डीएम कार्यालय पहुँच

कर कटान पीड़ितों की समस्या पर केंद्रित एक ज्ञापन डीएम को सौंपा।श्री राय के मार्गदर्शन में निकली गयी पदयात्रा का मकसद अगस्त क्रांति में देश को आजादी दिलाने को लेकर अपनी जान न्योछावर करने वाले क्रांतिकारीयों के प्रति श्रद्धा जाहिर करना तो था ही ,इसके साथ ही सेमरा ,शेरपुर आदि गांवों में हो रहे कटान को लेकर प्रशासन का ध्यान आकृष्ट करना भी था।संजय राय शेरपुरिया का हमेशा से अपने लोगों की परेशानियों से सरोकार रहा है।इसको देखते हुए उन्होंने जन जागृति अभियान के बाद खास तौर पर एक दिन कटान से पीड़ित ग्रामीणों के बीच बिताया।श्री राय ने कटान पीड़ितों को भरोसा जताया कि वह हर स्तर पर उनको सहयोग देने के लिए सदैव उपलब्ध रहेंगे।बताते चले कि देश के मशहूर सोशल एंटरप्रेन्योर संजय राय शेरपुरिया गाज़ीपुर जिले के शेरपुर गांव के मूल निवासी हैं।आयोजन में जेपी राय,बालाजी राय,आनंद पहलवान,राघवेंद्र उपाध्याय आदि मौजूद रहे।

जान पर खेल बाढ़ पीड़ितों को पहुँचायी मदद

गाजीपुर में संजय राय शेरपुरिया के नेतृत्व में निकली समाजसेवियों की एक टोली उस वक़्त खतरे में पड़ गयी,जब वह बाढ़ प्रभावित इलाकों में राहत सामग्री बांटने जा रही थी।समाजसेवियों की नाव तकनीकी खराबी आने के बाद गंगा में भटक गयी।सोशल एंटरप्रेन्योर संजय राय अपने सहयोगियों के साथ बाढ़ में फंसने के बाद भी लोगों की मदद करने से पीछे नहीं हटें। यूथ रूरल एंटरप्रेन्योर फाउंडेशन ने अगस्त महीने में गंगा में आयी बाढ़ को देखते हुए बाढ़ राहत कार्य करने का निर्णय लिया। बाढ़ प्रभावित जमानियां ब्लॉक में राहत कार्य के दौरान संजय राय अपनी टीम के सदस्य अभिषेक, विकास, अशोक, राजीव और बच्चू के साथ बाढ़ में बुरी तरह से फंस गए। टीम शेरपुरिया के लोग जिस मोटर बोट से राहत सामग्री बांटने निकले थे,उसके मोटर में तकनीकी खराबी आने के बाद बोट नियंत्रण से बाहर हो गयी। बोट अनियंत्रित होने के बाद 8 से 10 किमी तक उल्टी दिशा में बहने के बाद किसी अन्य स्थान पर पहुँच गयी। बोट पर सवार संजय राय और उनकी टीम के अन्य सदस्यों ने संबंधित एसडीएम को अपने साथ हुए दुघर्टना की जानकारी दी।सूचना मिलने पर जिला प्रशासन के भेजें रेस्क्यू टीम के कई घंटों की मशक्कत के बाद बोट पर सवार समाजसेवियों को सुरक्षित स्थान पर उतारा।

बोट में फंसे समाजसेवियों ने बोट के नियंत्रण से बाहर होने की सूरत में अपना हौसला कायम रखा। इस बीच उन्होंने अपने साथ बाढ़ पीड़ितों के लिए रखें लंच पैकेट को पानी में बहने से रोका।सभी समाजसेवी प्रशासन की मदद से रात करीब 11 बजे के बाद सुरक्षित स्थान पर ले जाए गए। जान जोखिम में होने के बाद भी धैर्य का परिचय देते हुए समाजसेवियों ने अपनी सूझ-बूझ से एक तरह अपनी जान बचायी ,वहीं दूसरी तरह गंगा में फंसे होने के बाद रेस्क्यू किए जाने के साथ ही उन्होंने बाढ़ प्रभावित लोगों के बीच खाना बांट कर सराहनीय काम किया,जिसकी हर तरफ चर्चा हो रही है ।

स्वाधीनता संग्राम की उर्वर भूमि चौरी-चौरा

अब कोरोना और बाढ़ पीड़ितों की सेवा गरीबों के लिए मसीहा बन कर उभरे 'रविकांत'

आमोद कांत मिश्र

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में चौरीचौरा को जो सम्मान प्राप्त है वह किसी से छिपा नही है। यह धरती माँ भारती का वह हिस्सा है जिसमे राष्ट्र और समाज की सेवा की भावना एक एक व्यक्ति में भरी हुई है। इसी धरती के एक लाल हैं रविकांत तिवारी। रविकांत ने पूरी दुनिया घूमी है लेकिन सेवा के लिए उन्होंने इसी धरती को चुना है। कोरोना की महामारी से लेकर अभी की बाढ़ तक मे पीड़ित गरीब और असहाय जनता की सेवा ने रविकांत को इस क्षेत्र में मसीहा जैसा बना दिया है। अभी भी वह अपनी इस मुहिम में तन मन धन से जुटे ही हैं। सनातन संस्कृति में सेवा की विराट भावना से अपने इस अभियान में लगे रविकांत ने बहुत काम किया है। वह सेवा का केवल स्वांग न कर वास्तव में जमीनी रूप में जुटे हैं। समाजसेवा के क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन कर रहे रविकांत गरीबों की मदद करने में सदैव आगे रहते हैं।

अस्पतालों में भर्ती गरीब और असहाय मरीजों और उनके परिजनों और सड़कों के किनारे जीवन बिताने वाले लोगों को दोनो वक्त का भोजन उपलब्ध कराने वाले रविकांत इस समय चौरीचौरा क्षेत्र के बाढ़ पीड़ितों की मदद में जी जान से जुटे हुए हैं। चौरीचौरा के बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र जयरामकोल, जोगिया, भरोहिया, भौरहीं, बसुही, राजधानी, गोरसैरा, सधना, बड़हरा सहित दर्जनों गांवों के बाढ़ पीड़ितों को प्रतिदिन भोजन और पानी उपलब्ध कराने में लगे हैं। बाढ़ पीड़ित हों या चिकित्सालयों में भर्ती लोग और उनके परिजन हों सभी के लिए तैयार होने वाला भोजन रविकांत तिवारी की देख रेख में उनके अपने घर पर इस तरह से तैयार किया जाता है कि उसे कोई भी बड़े चाव से खा सकता है। दर्जन भर से ज्यादा लोग इस काम को पूरा करने के लिए इस समय लगातार काम कर रहे हैं। दिन निकलने से पहले ही भोजन तैयार होता है और पूरी सफाई के साथ उसकी पैकिंग कर गत्तों में भरा जाता है और गाड़ी में लादकर रविकांत तिवारी या उनके भाई क्षेत्र के बाढ़ पीड़ितों के बीच पहुंचते हैं और सभी के हाथों में भोजन का पैकेट और पानी का वितरण करते हैं। चौरीचौरा क्षेत्र में बाढ़ आने से पूर्व जहां कहीं भी बन्धों में रिसाव की सूचना मिलती थी वहां पहुंचकर बन्धे की मरम्मत के लिए संसाधनों की

व्यवस्था कराकर बन्धे की मरम्मत कराते नजर आए। राजनीति में आने से पूर्व भी उनका यह काम चलता रहा जो आज भी अनवरत जारी है। बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में जहां कहीं भी पीने के पानी की किल्लत हुई वहां नल लगवाकर पानी की व्यवस्था कराया। इतना ही नहीं क्षेत्र में किसी भी गरीब की बेटी की शादी हो उसमें भी बढ़ चढ़ कर रविकांत मदद करते नजर आते हैं।

गोद लिया विद्यालय

रविकांत तिवारी ने एक पिछड़े विद्यालय को अपनी सेवा का केंद्र बना दिया है। रविकांत तिवारी ने उस विद्यालय को कई इलेक्ट्रॉनिक उपकरण तो दिए ही हैं, समय समय पर वहां खुद जाकर बच्चों के साथ उनकी आवश्यकताओं को समझते हैं और पूरी करते हैं। आज वह विद्यालय और वहां पढ़ने वाले बच्चे रविकांत तिवारी के प्रयासों से बहुत ही अच्छा परिणाम दे रहे हैं।

सनातन संस्कृति ने विरासत में दिया सेवाभाव

रविकांत तिवारी को सेवा का यह भाव और यह कियाशीलता एक प्रकार से विरासत में मिली है। उनके इन्हीं सब कार्यों को देखकर चौरीचौरा की जनता उनको किसी मसीहा से कम नहीं मानती है

बाढ़ पीड़ित सेवार्थ हेतु
स्वास्थ्य शिविर

और रविकांत तिवारी भी इस कार्य मे खरा उतरने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते हैं। सनातन संस्कृति में अगाध श्रद्धा रखने वाले रविकांत तिवारी में सेवाभाव संस्कारों में मिला है। निरंतर सनातन संतों के निकट रह कर वह ऐसा बहुत कुछ करना भी चाहते हैं। रविकांत तिवारी अपने इस कार्य के बावत कहते हैं कि उनको समाजसेवा विरासत में मिली है। समाज के दबे कुचले गरीब जनता की सेवा करके उनको एक सुखद अनुभूति होती है। धार्मिक प्रवृत्ति के रविकांत तिवारी कहते हैं कि मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है। बाढ़ से पूर्व कोरोना काल मे विगत दो वर्षों में रविकांत द्वारा की गई सेवा को इस क्षेत्र के लोग बड़े सम्मान के साथ याद करते हैं। कोरोना की महामारी में जब कोई किसी के पास तक नही फटकता था, रविकांत तिवारी ने अपने सहयोगियों के साथ मिल कर लोगो के भोजन, दवा , अस्पताल आदि की व्यवस्था में पूरी ताकत लगा दी थी। उन्हें जब भी किसी ने सहायता के लिए याद किया, उन्होंने पूरी तन्मयता से सेवा की। चौरी चौरा जैसी पृष्ठभूमि वाली धरती पर राह कर रविकांत जी ने लोगो की सेवा का जो व्रत लिया है उसकी जितनी सराहना की जाय, कम ही है।

यू पी रत्न से मुख्यमंत्री ने किया सम्मानित

उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से आयोजित किये गए समारोह में रविकांत तिवारी को समाजसेवा के लिए यू पी रत्न सम्मान प्रदान किया गया है। उनके स्वाभाविक सेवाभाव और वैश्विक संपर्कों के आधार पर ही उन्हें भाजपा संगठन ने प्रवासी भारतीयों से संपर्क और उन्हें सेवा से जोड़ने का भी दायित्व दिया है। रविकांत इस कार्य को बड़े ही मनोयोग से कर भी रहे हैं।

आपदा ने बहुत कुछ सिखाया

बेजुबानों के लिए संबल बना हेरिटेज फाउण्डेशन

अनिता अग्रवाल

कोविड- 19 या कहें कि दो वर्षों में विश्व को तबाही के कगार पर लाकर खड़ा कर देने वाली महामारी। ऐसे में जब मानव जाति ही अपना अस्तित्व बचाने के लिए लगातार लड़ रही थी, भला पशुओं, पक्षियों, वनस्पतियों, पेड़, पौधों की सुधि कौन ले। सृष्टि के इन बेजुबान तत्वों की कौन सुने। यह एक गंभीर स्थिति थी। सड़कों पर, गलियों में घूम कर जूठन आदि से पेट भरने वाले जानवर हों या प्रकृति के अन्य अवयव, सभी के लिए अस्तित्व का संकट आया था। ईश्वर न करे कि ऐसा फिर कभी हो लेकिन यह जरूर है कि इस आपदा ने बहुत कुछ सिखाया है। कोरोना संक्रमण पहली लहर में पूरे विश्व में हाहाकार मचा रहा था।

"सड़कों पर निर्वासित कुत्तों एवं गोवंशियों के लिए अभियान शुरू किया गया। तत्कालीन जिला मुख्य पशु चिकित्साधिकारी डॉ डीके शर्मा और पशु चिकित्सक डॉ संजयकुमार श्रीवास्तव भी समर्थन में आगे आए। महानगर के कारोबारी विक्रम सर्राफ एवं जनसहयोग से लॉकडाउन के दौरान हर दिन सैकड़ों की संख्या में निर्वासित गोवंशियों, कुत्तों औरपक्षियों को आहार और चिकित्सा उपलब्ध कराई गई।"

भारत में लॉकडाउन चल रहा था। हम सबके लिए यह निश्चित ही चकित कर देने वाला समय था। सब स्तब्ध, हक्का-बक्का,समझ से परे। जनजीवन ठप हो गया था, सक्रियता पर प्रश्नचिन्ह लग चुका था, सामाजिकता परपहरे से दिमाग की स्थिति विचित्र हो रही थी। हमारा खुद का शहर भी सख्त लॉकडाउन के पहरेमें था, ऐसे प्रतिबंधों के बीच जीवन बिल्कुल नया अनुभव था। सिर्फ मनुष्य ही नहीं बल्कि जीव-जन्तुभी बुरी तरह प्रभावित थे। ऐसी जीवन स्थितियां कल्पना से परे थीं, एक कवि हृदय के लिए तो इतनी जकड़न में छटपटाहट महसूस होना लाजमी था। ऐसे समय में रहते हुए प्रकृति का सहारा लेना उन सभी संवेदनशील लोगो ने उचित समझा। जो भी रचना धर्मी सरूजनशील थे, ऐसे एकांत के अवसरों में उनमें से अधिकांश के हृदय में मानव मात्र के साथ-साथ बेजुबान, बेसहारा पशु-पक्षियों को देखकर, महसूस करके उनकीअंतरात्मा में अत्यन्त करुणा का भाव प्रवाहित हुआ, उनसे वार्ता करने पर यह विचार सामने आया। इस परिवेश में सबके मन मे जो कुछ भाव आया, वह यूं ही नहीं था। सभी ने अपनी सनातन संस्कृति से जो कुछ भी देखा, जाना, समझा और महसूस किया , उसका प्रभाव मन-आत्मा में घुल-मिलकर एकाकार हो गया । यह जीवन का आवश्यक तत्व भी है। अगर हम अपनी

सनातन संस्कृति-जिसमें हर पल सांस ले रहे हैं- से ही इस हद तक प्रभावित हैं और साथ ही जीवन के हर पग पर यह हमें यही सिखाती रही है कि प्रकृति, पशु, पक्षी, नदी, तालाब, पेड़-पौधे, पहाड़ सब हमारे जीवन के अंग हैं,सृष्टि के प्रारम्भ से ही ये हमारे पूज्य रहे हैं, हमारे लिए जीवन रक्षक और जीवन दायक रहे हैं। हमारी सनातन संस्कृति में बसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष इन सबको समेकित करके ही किया गया है। इस बोध ने ही हमें कुछ अलग करने के लिए प्रेरित किया। उनकी प्रेरणा से गोरखपुर शहर में लम्बेसमय से सामाजिक क्षेत्र और पत्रकारिता से जुड़े नरेन्द्र मिश्र और राजीव दत्त पाण्डेय जैसे अनेक लोगों ने ऐसे में भूखऔर बीमारी से जूझते बेजुबानों की मदद करने की ठानी।

गोरखपुर स्थित कुसुमही जंगल के विनोदवन में हिरण, मोर, अजगर, बंदर और अन्य पक्षियों को भोजन उपलब्ध कराने से शुरूआत की। इस पहल को मीडिया में सराहना मिली तो शहर के दूसरे लोगभी आगे आए और फल, चना, भूजा, बिस्कुट और अन्य खाद्य पदार्थ लेकर विनोद वन मिनी जू औरकुसम्ही जंगल पहुंचने लगे। सड़कों पर निर्वासित कुत्तों एवं गोवंशियों के लिए अभियान शुरू किया गया। तत्कालीन जिला मुख्य पशु चिकित्साधिकारी डॉ डीके शर्मा और पशु चिकित्सक डॉ संजयकुमार श्रीवास्तव भी समर्थन में आगे आए। महानगर के कारोबारी विक्रम सर्राफ एवं जनसहयोग से लॉकडाउन के दौरान हर दिन सैकड़ों की संख्या में निर्वासित गोवंशियों, कुत्तों औरपक्षियों को आहार और चिकित्सा उपलब्ध कराई गई। इस अभियान से काफी लोगों को जोड़कर औरव्यक्तिगत स्तर पर अपने मोहल्ला एवं गलियों में इसका क्रियान्वयन किया। अब तक के इन कार्यों से प्रख्यात फिल्म निर्माता-निर्देशक पर्यावरणविद माइक एच पाण्डेय काफी प्रभावित हुए। उनकी सलाहपर अपने सेवा कार्यों को व्यवस्थित करने के लिए सितंबर 2020 में हेरिटेज फाउंडेशन (ट्रस्ट) का पंजीकरण कराया गया। माइक पांडेय की प्रेरणा से स्वच्छ भारत मिशन ग्रामीण एवं पंचायती राज विभागके सहयोग से दलित बस्तियों, मुसहर बस्तियों एवं वनटांगियां बस्तियों में स्वच्छता पर कार्यक्रमआयोजित किए गए। इस दौरान लोगों को साफ-सफाई के महत्व से अवगत कराते हुए महिलाओंको सैनेटरी पैड, हाथ धुलने के लिए साबुन, सैनेटाइजर, बिस्कुट, ब्रेड और मास्क वितरित किए गए। तकरीबन 6 की संख्या में लगाए गए प्रत्येक शिविर में जिला पंचायत राज अधिकारी हिमांशु शेखर ठाकुर एवं स्वच्छ भारत मिशन ग्रामीण के जिला संयोजक बच्चा सिंह का भी बहुत सहयोग मिला। इन कार्यक्रमों का काफी अच्छा रिस्पांस मिला।

कोरोना संक्रमण की गंभीरता और उसके बचावके प्रति ग्रामीण महिलाएं जागरूक हुईं। हेरीटेज फाउंडेशन ने यह तय किया कि पर्यावरण एवं वन्यजीवों के प्रति संवेदना, संरक्षण एवंसंवर्धन में आमजन की सहभागिता बढ़ाई जाएगी। इस क्रम में शहीद अशफाक उल्ला खाँ प्राणीउद्यान, रामगढ़ झील के आद्र्रभूमि में प्रवासी एवं स्थानीय पक्षियों के प्रति लोगों को जागरूक करनेके लिए बर्ड वॉच आयोजित किया जिसमें शहर के 250 की संख्या में मौजिज लोग एवं युवा आगे आए। 'हेरिटेज एवियंस' के नाम से समूह बनाया गया । इन्हीं उद्देश्यों

के साथ हेरिटेज फाउंडेशन एवं पर्यावरण, वृक्ष एवं जलवायु परिवर्तन विभाग ने मिल कर पक्षियों की फोटो प्रदर्शनी, नुक्कड़ नाटक,पक्षियों एवं वन्यजीव पर डाक टिकट एवं वाइल्ड लाइफ फोटोग्राफर चंदन प्रतीक, धीरज कुमार सिंहएवं हेरिटेज फोटोग्राफर संदीप श्रीवास्तव, अनुपम अग्रवाल और करिश्मा सिंह के द्वारा लिये गये चित्रोंकी प्रदर्शनी लगाई गई। अतिथि के रूप में सांसद रवि किशन शुक्ल, मुख्य विकास अधिकारी इंद्रजीत सिंह, डीएफओ अविनाश कुमार, डीपीआरओ हिमांशु शेखर ठाकुर ने सभी का मनोबल बढ़ाया।

कोरोना की दूसरी लहर में आक्सीजन और दवाओं के संकट के बीच न केवल लगातार जागरूकता अभियान संचालित किए गए। बल्कि लोगों को साबुन, सैनेटाइजर, सैनेटरी पैड, ब्रेड,बिस्कुट, आक्सीजन सिलेंडर और उनकी जरूरत की दवाएं भी जनसहयोग से उपलब्ध कराई गई। आवश्यकतानुसार विशेषज्ञ चिकित्सकों से पीड़ितों का वर्चुअल संवाद कराकर जरूरी चिकित्सकीयसलाह भी दिलाई गई। फिल्मों के जरिए लोगों को जागरूक करने के प्रयास में हेरिटेज फाउंडेशन ने वन्य प्रभाग गोरखपुर के सहयोग से इको टूरिज्म पर आधारित 8 मिनट और 2.40 मिनट के दो वृत्तिचित्र भीबनाए जिसे मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने विश्व पर्यटन दिवस पर लाँचिंग करते हुए काफी सराहा। डीएफओ अविनाश कुमार को ऐसी और फिल्म बनाने के लिए प्रेरित किया। इसफिल्म को अब तक करीब 15 लाख लोगों ने सोशल मीडिया और यूट्यूब पर देखा है। कई कार्यक्रमों में इसका सार्वजनिक रूप से प्रसारण भी हुआ है। हेरिटेज ने अपनी मुहिमको युवाओं तक पहुंचाने के लिए दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्रविभाग में एक दिन का फिल्म फेस्टिवल एवं संवाद आयोजित किया जिसमें वर्चुअली स्वयं माइक एच पाण्डेय जो लगातार तीन बार ग्रीन आस्कर एवार्ड से सम्मानित किए जा चुके हैं, ने भी संबोधित किया। चार वृत्तिचित्रों का प्रदर्शन हुआ जिसे सभी ने सराहा। इसी कड़ी को और अर्थपूर्ण बनाते हुएहेरिटेज फाउंडेशन और भारत सरकार की संस्था राष्ट्रीय विज्ञान प्रसार के साथ मिल कर तीनदिवसीय साइंस फिल्म फेस्टिवल कार्यशाला आयोजित की गई। हिंदी विभाग दीन दयाल उपाध्यायगोरखपुर विश्वविद्यालय के सहयोग से रसायन शास्त्र विभाग के सभागार में विज्ञान फिल्म मेकिंगवर्कशॉप में 100 से अधिक युवाओं ने प्रतिभागिता की, जिसमें विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर राजेश सिंह भी शामिल हुए और आयोजन की सराहना की।

(लेखिका हेरिटेज फॉउंडेशन की संरक्षक हैं)

आपबीती

जीवन-मृत्यु के बीच 15 दिन

स्नेह किरन

कोरोना संक्रमण पहली लहर में पूरे विश्व में हाहाकार मचा रहा था। भारत में लॉकडाउन चल रहा था। हम सबके लिए यह निश्चित ही चकित कर देने वाला समय था। सब स्तब्ध, हक्का-बक्का,समझ से परे। जनजीवन ठप हो गया था, सक्रियता पर प्रश्नचिन्ह लग चुका था, सामाजिकता परपहरे से दिमाग की स्थिति विचित्र हो रही थी। हमारा खुद का शहर भी सख्त लॉकडाउन के पहरेमें था, ऐसे प्रतिबंधों के बीच जीवन बिल्कुल नया अनुभव था।

यह अद्भुत अनुभव था। अकल्पनीय था। अत्यंत पीड़ादायक। सब कुछ लिखना संभव ही नही। फिर भी लिखने की कोशिश इसलिए कर रही क्योंकि कुछ ऐसे शब्द पीड़ा से मुक्ति की तलाश करने वाले लोगों के लिए हो सकता है कि सुकून दे सकें। पहले तो पूरी महामारी के दौरान लोगों, पीड़ितों और समाज के लिए खुद को लगाया लेकिन मुझे आभास ही नहीं था कि स्वयं भी इस पीड़ा को भोगना पड़ेगा। 29 अप्रैल '2021 की रात अचानक से उन्हें तेज बुख़ार, कंपकंपी, ठंड लगना,सरदर्द, बदनदर्द और हड्डियों में खिंचाव महसूस होने लगा। अचानक से साँस लेने में भी कठिनाई आने लगी। लगा कि अत्यधिक परिश्रम की वजह से ऐसा हुआ होगा इसलिए 30 अप्रैल को सारा दिन कंबल ओढ़े सोई रही कि शायद सब आप से आप ठीक हो जाएगा। 30 अप्रैल की रात को जब हालत और बिगड़ने लगी और सांस लेने में काफी दिक्कत आने लगी तो 1 मई को ही कोविड-19 का शक होने पर जांच करवाई और जांच की रिपोर्ट पॉजिटिव आ गई। रिपोर्ट पॉजिटिव आने के तुरंत बाद ही खुद को घर के बाकी सदस्यों से अलग कर लिया और बिना अस्पताल में भर्ती हुए होम आइसोलेशन में रहकर ही डॉक्टरों की देख रेख में इलाज शुरू कर दिया। 1 मई से लेकर 15 मई तक का समय जीवन और मृत्यु के बीच एक रोमांचकारी यात्रा की तरह रहा जिसमें कई बार ऐसा लगा कि अब शायद जीवन खत्म होने के कगार पर आ गया है ; पर इस विचार को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया और लगातार डॉक्टरी दिशा निर्देश का पालन करने के साथ -साथ खुद को योग,आसन, प्राणायाम, संगीत और अच्छी किताबों की

पहले तो पूरी महामारी के दौरान लोगों, पीड़ितों और समाज के लिए खुद को लगाया लेकिन मुझे आभास ही नहीं था कि स्वयं भी इस पीड़ा को भोगना पड़ेगा।

संगत से जोड़े रखा। साथ ही दवा का पूरा कोर्स ठीक से लेने के अलावा ओआरएस घोल, विटामिन सी टेबलेट और मल्टीविटामिन सप्लीमेंट भी लेती रही। इसके अलावा हर दिन सभी मौसमी फल, निम्बू पानी, आंवले का मुरब्बा, गिलोय का रस, तुलसी लौंग अदरख हल्दी और सेंधा नमक से बना काढ़ा, दूध-हल्दी, पनीर और घर का बना प्रोटीन युक्त भोजन के साथ-साथ नियम से 2 बार गर्म पानी से गरारा और कम से कम 3 बार खौलते हुए पानी से गर्म भाप भी लेती रही जिससे कोरोना वायरस से संक्रमित फेफड़ो का संक्रमण पूरी तरह खत्म हो गया। इस दौरान बंद कमरे में पूरा आराम भी किया, कहीं भी बाहर जाने से पूरा परहेज किया और सकारात्मक मानसिकता के साथ बराबर लिखती पढ़ती रही। सोशल मीडिया पर भी कोरोना को लेकर आवाम में सकारात्मक मानसिकता को ही बढ़ावा देती रही। कोरोना से जुड़ी किसी भी नकारात्मक ख़बर पर बिल्कुल ही ध्यान ही नहीं दिया और अपनी सोंच को भी हमेशा सकारात्मक बनाये रखा। 1 मई के बाद फिर से दोबारा 17 मई की सुबह अस्पताल में कोविड-19 की जांच हुई और इस बार रिपोर्ट नेगेटिव आने से परिवार, रिश्तेदारों और मित्रों के बीच में खुशी का वातावरण बन गया।

इस कोरोना-काल ने मुझे अपने अंदर मुड़ने का एक बेहतरीन अवसर दिया है। भले ही व्यवहारिक जीवन पूरी तरह बाधित हो गया पर इसी रास्ते से ख़ुद को जानने का जो स्वर्णिम अवसर मिला, अपना मूल अस्तित्व, अपने जीवन का वास्तविक उद्देश्य, योग, ध्यान, मौन,अध्यात्म व वैराग्य जैसे सरल से सरल व गूढ़ से गूढ़ विषयों पर दो घड़ी ठहर कर सोंचने का अवसर मिला यह अपने आप मे एक बहुत बड़ी सकारात्मक बात रही। कोरोना काल में हर समसामयिक विषय पर नियमित रचनात्मक लेखन,वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से मित्रों व परिजनों के बीच योग, आसन, प्राणायम और विभिन्न यौगिक क्रियाओं के साथ-साथ मेडिटेशन की कक्षाएं लेना अपने आप में एक बेहद सुखद अनुभव रहा। इन सब के लिए पहले अपनी व्यस्त दिनचर्या में समय निकालना बेहद मुश्किल रहा था।

(लेखिका अररिया, बिहार के रानीगंज प्रखंड की लेखिका, सामाजिक कार्यकर्ता और संघ की जिला कॉर्डिनेटर हैं)

काव्यांगन

डॉ. रूचि चतुर्वेदी
आगरा

प्रेम का मधुरिम स्वर संगीत.....

पायल ने आसावरि गायी,
बिछुए ने मल्हार सुनायी,
चूड़ी यामिनि के स्वर बाँधे,
झुमके ज्यों बाजे शहनाई।

राग प्रयाग सुहाग भागवत
नारी जीवन गीत,
प्रेम का मधुरिम स्वर संगीत।

ममता की शाश्वत स्वर लहरी।
मन भावों की पुर्वी ठहरी।
सारे गम पत्नी पी लेती।
औढव सा आलय कर देती।

मालकौंस श्री मेघ हिंडोला
पावन पावन प्रीत।
प्रेम का मधुरिम स्वर संगीत।

जीवन ज्योति करे दीपक सी।
प्रेम रागिनी उर सप्तक सी।
धीरधरा ध्यानाश्री जैसी,
पूज्या देवी शुभम हृदय सी।

लाज मान पर संकट हो तो
भैरवि में परिणीति।
प्रेम का मधुरिम स्वर संगीत।

एक उंगली पे गिरिराज को धर लिया,....

प्रेम तुलसी के दल सी सजी राधिका,
हर निधिवन बसी कृष्ण की पाँखुरी
एक उंगली पे गिरिराज को धर लिया,
दस की दस उंगलियों से बजी बाँसुरी।।

कृष्ण राधा को सरगम सुनाते रहे,
सुनते-सुनते मगन तन तमूरा हुआ।
प्रीत पावन हुई प्राण दीपक जले,
तृप्ति के भाव ले मन मयूरा हुआ।।
नैन ने नैन से ही समर्पण किया,
आंसुओं ने मगन हो भरी आँजुरी ।।

एक उंगली पे गिरिराज को धर लिया,
दस की दस उंगलियों से बजी बाँसुरी।।

मन ही मन कृष्ण ने जो किया याद तो,
ब दौड़ीं राधा बसुरिया संभाले हुए।
पी गए कान्ह जब खौलती खीर को,
तो हृदय राधिका जी के छाले हुए।।
मिलके इक प्राण दोनों हुए इस तरह,
नभ से मिलती है जैसे धरा माधुरी।।

एक उंगली पे गिरिराज को धर लिया,
दस की दस उंगलियों से बजी बाँसुरी।।

जानकी के राम हैं......

वो अमर सिंदूर मेरा, कंठ की जयमाल हैं।
माथ बिंदिया हैं सजीली, गर्व सजता भाल हैं।।
सर्वप्रिय त्रैलोक स्वामी वे परम सतनाम हैं।
जगत नायक हैं वही इस जानकी के राम हैं।

हाँ रही वनवास में मैं किन्तु उनको दोष मत दो।
कोई त्रुटि उनकी नहीं है व्यंगमय उर कोष मत दो।
ये नियति निर्णय वृहद जिसको पड़ा स्वीकार करना।
तुम मेरे नयनों से पूछो राम नयनों अश्रु झरना।

नेह सागर सा हृदय में आत्म का वह धाम हैं।
जगत नायक हैं वही इस जानकी के राम हैं।

मत बनो निष्ठुर कि मेरे राम को निष्ठुर बताते।
जब प्रजा हो कष्ट में जग से अधिक अश्रु बहाते।
वो जो करुणा सिंधु हैं क्या प्राण प्रिय को छोड़ आते।
थे प्रजा के शब्द जिनको मैं स्वयं चल दी निभाते।

राम सिय के राम हैं वे स्वांस आठों याम हैं।
जगत नायक हैं वही इस जानकी के राम हैं।

राम अग्नि राम जल जग राम बिन रीता रहे।
जानकी के प्राण राघव राम उर सीता रहे।
राम से रामा रमा अरु राम से यह सृष्टि है।
राम की किरपा से तन मन श्रवण नयनन दृष्टि है

नाथ ये सौभाग्य मेरे पुण्य का परिणाम हैं।
जगत नायक हैं वही इस जानकी के राम हैं।

आरती आलोक वर्मा
सिवान, बिहार

आइए मां जानकी

राम का फिर नाम लेकर
आइए मां जानकी,
जगमगाती शाम लेकर
आइए मां जानकी।

है दशानन रूपी नफरत
अब हमारे देश में,
इक नया संग्राम लेकर
आइए मां जानकी।

नारी जीवन है यहां अब
रात अमावस की तरह,
अब सुहानी शाम लेकर
आइए मां जानकी।

प्यार ममता और मुहब्बत
ही इबादत हो जहां,
वो धरा पर धाम लेकर
आइए मां जानकी।

देखते हैं अमन का सपना
जो उनके वास्ते,
प्यार का पैगाम लेकर
आइए मां जानकी।

जिस दिए का मोल दुनिया
दे सके ना आरती,
वह दिया बे दाम(अनमोल)
लेकर आइए मां जानकी।

ब्रजभाषा कुण्डलियां छंद

1.

नैनन सैं ज्योति गयी, अधरन सैं मुस्कान,
जब सैं मुरलीधर गए, राधा हैं बिन प्राण।
राधा हैं बिन प्राण,दरस कैसैं मिल पावै,
सूझत है कछु नाहिं, चैन हियरा कौं जावै।
कहैं राधिका स्याम, पुकारें तुमकों रैनन।
जीवन की इक आस, तिहारी छवि इन नैनन।।

2.

राधे राधे रट मिलें ,कान्हा जी उर धाम।
कान्हा कान्हा जप अधर,जपें राधिका नाम ।।
जपें राधिका नाम,चले आमें गिरिधारी ।
पूरन हों सिग काम ,बनै हर बात हमारी ।।
कहै बिरज मुस्काय ,कान्ह राधा बिन आधे ।
जनम सफल है जाय, रटौ बस राधे राधे ।।

प्रगीत कुँअर
ऑस्ट्रेलिया/सिडनी

ग़ज़ल

उनसे मिलना-जुलना चलता रहता है
मिलकर उनका जाना खलता रहता है

उसकी आँखों की चौखट पर एक दिया
बरसों से दिन-रात ही जलता रहता है

कितने कपड़े रखता है अलमारी में
जाने कितने रंग बदलता रहता है

यादों में रह जाते हैं फिर भी ज़िंदा
जिन लमहों को वक़्त निगलता रहता है

सूरज को देखा है पानी में गिरते
गिरकर फिर भी रोज निकलता रहता है

औरों ने रक्खा था मेरे पास कभी
मेरे भीतर दर्द जो पलता रहता है

ग़ज़ल

नेकी की पहने बद-इंसाँ खाल मिले
कदम-कदम पर फैलाए वो जाल मिले

ऊपर वाला नीचे ग़र आ जाए तो
उसको नीचे का भी थोड़ा हाल मिले

नभ पर तो धरती ही होती नहीं मगर
धरती पर आते-जाते भूचाल मिले

मेहनत बस मेहनत ही जिनका धर्म रहा
भूखे पेटों वाले पिचके गाल मिले

रहें मौन जो उनका तो मालूम नहीं
बातों के सौदागर गड़बड़-झाल मिले

खुद की ढपली खुद के ही जो राग कहें
कैसे उन लोगों से अपनी ताल मिले

राजिंदर सिंह 'बग्गा'
कनाडा

ग़ज़ल

बात इधर उधर तो बहुत घुमाई जा सकती है
पर सच्चाई भला कब तक छुपाई जा सकती है

खून से बना कर मां बच्चे को जो पिलाती है
उस दूध की कीमत कैसे चुकाई जा सकती है

सहरा की प्यास तो समंदर बुझा सकता है
पर समंदर की प्यास कैसे बुझाई जा सकती है

नहीं हल निकलता गर तोप और बंदूक से
लड़ाई प्यार से भी तो सुलझाई जा सकती है

खींच दी है दिलों में गर दीवार मजहब ने
उसमें कोई खिड़की भी तो बनाई जा सकती है

किसी बेबस पे जुल्म देख गर कुछ कर नहीं सकते
तो शर्म से यह गर्दन तो झुकाई जा सकती है

मुश्किल है लड़ना गर अकेले किसी बुराई से
उसके खिलाफ़ मुहिम भी तो चलाई जा सकती है

दुनिया भर के वैद्य जब बेबसी से हाथ जोड़ दें
तो दुआ की ताकत भी तो आजमाई जा सकती है

अपनी असलियत तो दौलत से छुपा लेगा कोई
पर औकात भला कब तक छुपाई जा सकती है

राह मुश्किल होती है जरा वक़्त लग जाता है
दौलत तो ईमानदारी से भी कमाई जा सकती है

चलो मान लिया हमने कि 'राज' बेगुनाह है
पर उस पर कोई तोहमत तो लगाई जा सकती है

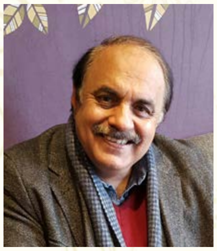

तेजेन्द्र शर्मा
यू.के.

बेर शबरी के जो खाओ, तो चैन आयेगा

दिल से रावण जो करो दूर तो चैन आयेगा
राम को मन में बसा लो, तो चैन आयेगा।

राम ने जात पांत धर्म नहीं माने कभी
ख़ुद को केवट ही बना लो, तो चैन आयेगा।

दावतें तुमने ज़माने में बहुत की होंगी
बेर शबरी के जो खाओ, तो चैन आयेगा।

यूं तो दुनियां में लड़ाई की नहीं कोई कमी
धर्म के पक्ष में लड़ जाओ, तो चैन आयेगा।

राम आदर्श पति, भाई, मित्र, राजा थे
सच्चे इन्सान ही बन पाओ, तो चैन आयेगा।

हज़ारों पोथियां पढ़ कर भी परेशान हो तुम
एक मानस को जो पढ़ जाओ तो चैन आयेगा।

चांद तारों को समझने की अजब होड़ लगी
राम की महिमा समझ जाओ तो चैन आयेगा।

रचना श्रीवास्तव
अमेरिका

मैं भारत हूँ

मैं भारत हूँ तुमसे
इतना कहता हूँ
तुम्ही देखो क्या क्या मैं सहता हूँ
देखा है मैने
हिन्दी को थामें ऊर्दू का हाथ
रह रहीं सदियों से
जैसे दो बहने हो साथ
प्यार पर इनके
रचो न कोई खेल
टुटा कभी जो रिश्ता
मुश्किल होगा मेल

मेरी आजादी की खातिर
हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई
ने सर कटाया था
तब जा कर तुम सभी ने
आजाद भारत पाया था
बहा जो लहू बोलो किसका था ?
क्या किसी एक धर्म
एक जाती का था
फिर क्या कहूं तुम समझदार हो
में भारत हूँ तुमसे
इतना कहता हूँ
तुम्ही देखो क्या क्या मैं सहता हूँ

आज में टुकड़ों में दीखता हूँ
कोई कहीं से खींच रहा है
कोई कहीं नोच रहा है
उठो मेरे बच्चों मेरे
मेरी तुरपाई कर दो
बहे मेरे आँगन में वो
एक ही पुरवाई कार्दो

हिन्दू के भजन मुझी में
मुझमें ही आज़ान है
गीता रखी है सिरहाने तो
हाथों में कुरान है
प्यारे मेरे लिए दोनों ही हैं
राम या रहमान है
तुम्ही कहो बाँटूं कैसे
मैं तो सभी का हुन्दुस्तान है
में भारत हूँ तुमसे
इतना कहता हूँ
तुम्ही देखो क्या क्या मैं सहता हूँ

डॉ. हिमांगी द्विवेदी
बाँदा

मीलों की दूरी

भूख से छटपटाई देह तुम्हारी
निकल पड़ी है
मीलों की दूरी तय कर
अपने गाँव-घर की ओर
एक-एक कदम बढ़ाते
पैदल ही।

न ही कोई साधन है
न ही कोई राशन
फिर भी अपने घर तक पहुँचने
की
आस में निकल पड़े हैं हजारों की
तादाद में
एकजुट होकर मजदूर सारे।

भूख से बिलबिलाते बच्चे
एक रोटी की आस लगाये
अपने पिता के झुके कन्धों पर ही
ऊँघने लगे हैं
देखते हैं टकटकी बांधकर इधर
से उधर
मगर वीरान सड़क के सिवा
नहीं आता नजर कुछ भी।

सवाल पूंछने पर-
तुम्हारा इस तरह से एकजुट
होकर निकलना
इस भयावह महामारी को
आमन्त्रित कर रहा है
यह जानते हुए भी
कि यह संक्रमण फैल गया चहुँ
ओर
तो सबके सब हो जाओगे मौत के
करीब।

बड़े ही विनम्र भाव से बोला
साहब न घर है न ही पेट भरने
की व्यवस्था
भूख से मर जाते हम सब वैसे भी
इसलिए बढ़ रहे हैं अपने गाँव
की ओर
जहाँ कम से कम भूख से
नहीं मरेंगे हम और हमारे बच्चे।

हमारे पास यहाँ न तो छत है न
ही पैसा
मालिकों के अहसान तले
मिलती थी मजूरी और रहने के
लिए छत भी
जिससे होता था गुजारा हमारे
परिवार का
मग़र अब इनमें से नहीं बचा
कुछ भी
पास हमारे।

जानते हैं हम सब
कि राह मीलों की तय करनी
है हमें
जानते हैं हम सब यह भी
कि किसी न किसी दिन
दया की भीख मिलेगी हम सबको
भी
या तो सरकार की रहमत बरसेगी
हम पर
या फिर किसी फरिश्ते की पड़ेगी
नज़र
हम गरीब मजदूरों पर।

डॉ० प्रीता प्रिया
हल्द्वानी

सुध खो क बईठल छी

सुध खो क बईठल छी हुनका दुआरी
कहियो त तकतन ऊ भोला भंडारी

डमरू के डम-डम से मन में हिलोर भेल
हुनके धेयान से अतमा ईंजोर भेल
क्वण क्वण आ छम छम के धुन में
हेरईली
देख-देख रूप हम मन में मुस्कईली

शब्द , नाद फूट परल गईली नचारी
कहियो त तकतन ऊ भोला भंडारी

बाजल पिनाक त जिनगी टंकार उठल
उत्कट युयुत्सा से मन ई हुंकार उठल
हुनके चरण-रज ले उठली हियाव से
शिव नाम रक्षक हए जग के छलाव से

आंख-आंख भर लेली शिवतांडवकारी
कहियो त तकतन ऊ भोला भंडारी

हुनके भटकाएल जीउ दर-दर भटकईछी
पावे ला हुनके त बन-बन बउआईछी
जिनगी में हम्मर अब एक्के अरमान हए
सांस-सांस सुमिरब हम जाबे ल प्रान हए

राख होएब, लपेस लेतन चिताभस्मधारी
कहियो त तकतन ऊ भोला भंडारी

डॉ ऋतु दुबे तिवारी
गाज़ियाबाद

नहीं हूँ मैं!

यूँ तो तलाश में है, सारा जमाना ख़ुद की,
पर किसी काफ़िले का हिस्सा नहीं हूँ मैं!

मेरे चेहरे में न जाने कौन इतना मुस्कुराता है,
ये तबस्सुम,ये सिलसिले,ये नज़ाकत नहीं हूँ मैं!

धड़कनो,साँसों का सिलसिला,बदस्तूर ज़ारी है मगर
खाली है जिस्म का ये मकां,रहबर नहीं हूँ मैं!

अब न समझा मुझे जीने का मतलब मेरे दोस्त,
एक बहती नदी हूँ, कोई ठहरा दरिया नहीं हूँ मैं!

अक्सर मुझमे सिसकता है कोई रात रात भर,
आईने का वो हँसता हुआ चेहरा नहीं हूँ मैं!!

नया पैबंद

तुम्हारा कहा हर शब्द
मेरे अंतस को रख देता है चीरकर।
मैं सुनती हूँ ,सहती हूँ...
और फिर सुई-धागे के पुराने डिब्बे से
निकाल लेती हूँ एक पेंसिल और काग़ज
जिसमें पिरो देती हूँ कुछ शब्द...
और शब्दों में बाँध देती हूँ भाव
इन भावों के एक-एक टाँके से,
हौले-हौले सिल देती हूँ
अपना ताज़ातरीन ज़ख़्म!
टाँका-दर-टाँका,शब्दों की सिलाई से
बन जाता है एक और पैबंद
मेरे मन पर!
ढेरों पैबंदों के बीच एक नया पैबंद।
जैसे ही दाँतों से कुतरकर तोड़ती हूँ
शब्दों का धागा,
मेरा पैबंद बदल जाता है एक कविता में।
उँगलियों से टटोलती हूँ, देखती हूँ उसकी सीवन
और टाँके
फिर मुतमइन होकर,
बाँध देती हूँ धागे में एक और गाँठ...
तुम्हारे दिए किसी नए ज़ख़्म को सिलने के लिए।

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME ____________________

पिता/पति
FATHER/HUSBAND ____________________

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE ____________________

____

____

पिन कोड
PIN CODE ____________________

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE ____________________

ई-मेल
MAIL ID ____________________

मोबाइल नं०
MOBILE NO. ____________________

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

	भारत में /IN INDIA	अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs
वार्षिक/ANNUAL	1000/-	$100
त्रैवार्षिक/THREE YEARS	2500/-	$250
पंच वार्षिक/FIVE YEARS	5000/-	$400
आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON	11000/-	$750
आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION	21000/-	$1000

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

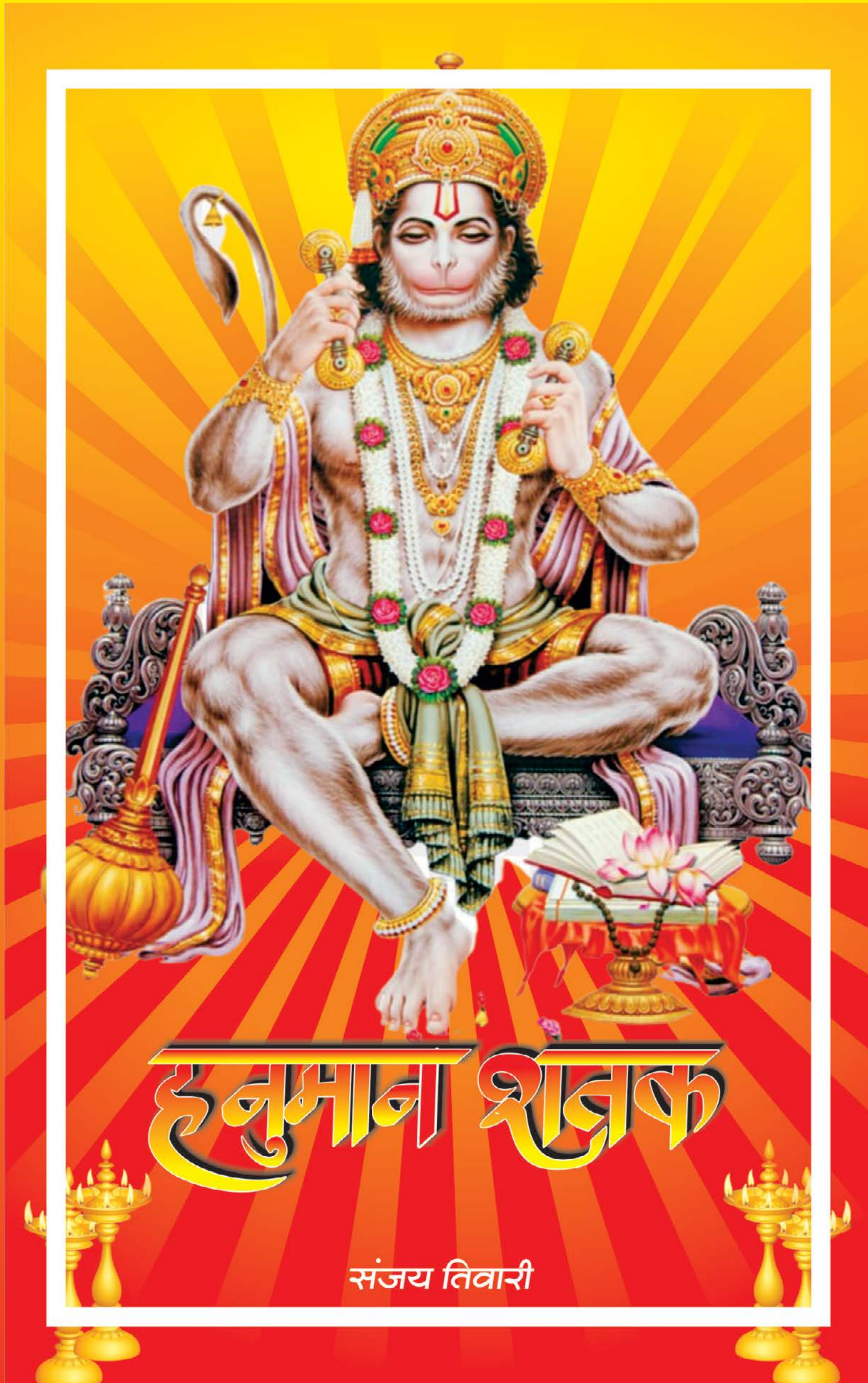
हनुमान शतक
संजय तिवारी

पत्र व्यवहार

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org